C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

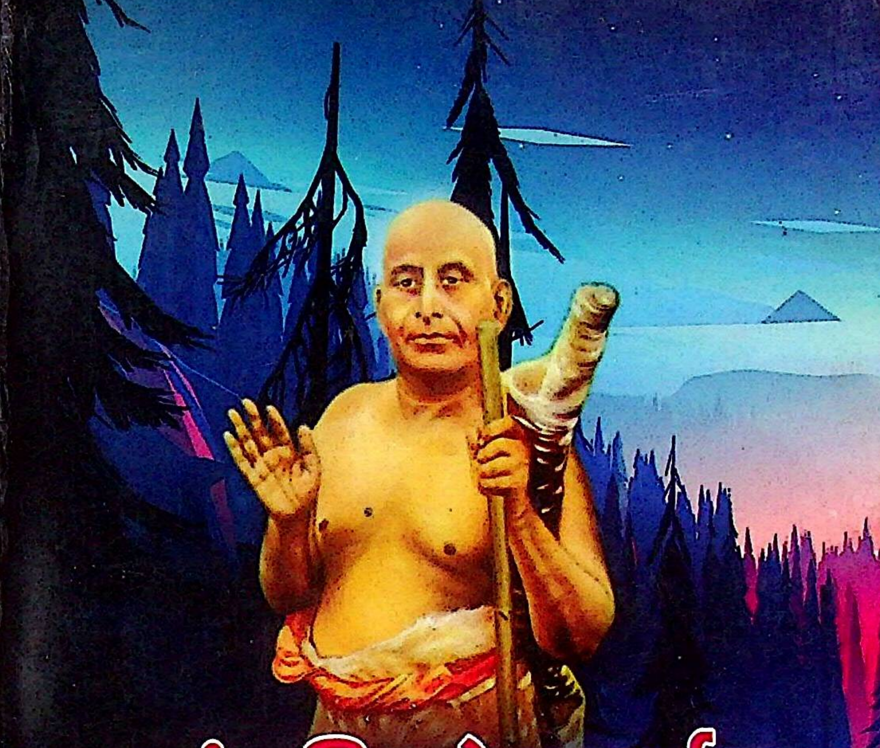

पातंजलि योग दर्शन

का सरल एवं संक्षिप्त भाष्य

द्वारा

महर्षि योगीराज श्री स्वामी ओङ्कारानन्द सरस्वती

...oundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पातंजलि योग दर्शन

का सरल एवं संक्षिप्त भाष्य

द्वारा

महर्षि योगीराज श्री स्वामी ओङ्कारानन्द सरस्वती

मूल्य : 50.00

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाशक :

महर्षि ओङ्कारानन्द प्रणव मन्दिर समिति, (प्रकाशन-विभाग)

प्रणव मन्दिर, ओङ्कार-आश्रम
ग्राम : बैजनाथपुर, पत्रालय : बालापार
जनपद गोरखपुर (उ0प्र0)

सर्वाधिकार स्वरक्षित

प्रथम संस्करण
2019

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकाशकीय

अब से लगभग 52 वर्ष पहले परमपूज्य स्वामी ओंकारानन्द जी महाराज ने 'पातंजलि योग दर्शन' की अत्यन्त सरल-संक्षिप्त एवं सुबोध व्याख्या की थी। उस व्याख्या (व्याख्यान) को लिपिबद्ध करने का पुण्य कार्य स्वामी जी के प्रिय शिष्य एवं स्नेहभाजन श्री (अब स्व0) ओंकारनाथ यादव ने किया था। संयोगवश वह डायरी जिसमें व्याख्यान अंकित है, अब प्राप्त हुई है। समिति ने, इस परम मूल्यवान और अध्यात्म में रुचि रखने वाले प्राणियों के लिए अत्यन्त उपयोगी सम्पत्ति को, प्रकाशित करवाकर लोक के समक्ष उपस्थित करने का संकल्प लिया। भगवान ओंकारेश्वर की कृपा और पूज्यपाद गुरुदेव के आशीष से इस पुस्तक का प्रकाशन संभव हो सका है।

इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ की प्रूफ रीडिंग का कार्य प्रणव-मन्दिर ओंकार आश्रम से सम्बद्ध ग्राम-बालापार निवासी डा0 वेद प्रकाश पाण्डेय जी ने अत्यन्त मनोवियोग से किया है। इस निमित्त उन्हें हार्दिक धन्यवाद !

आशा है, धर्म, दर्शन, योग, साधना, अध्यात्म और आत्मोन्नति में रुचि रखने वाले सज्जन-साधक इससे लाभान्वित होंगे।

तथास्तु !

गुरुपूर्णिमा

2019

ओंकार ग्रन्थ माला प्रकाशन विभाग

प्रणव मन्दिर, ओंकार आश्रम, पत्रालय-बालापार, गोरखपुर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

योगदर्शन

योगदर्शन में चार पाद होते हैं -

1. समाधि पाद
2. साधन पाद
3. विभूति पाद
4. कैवल्य पाद

1. समाधि पाद : कितने प्रकार की समाधियाँ होती हैं, इनका वर्णन है तथा चंचल चित्त को कैसे रोका जाए, इसकी ओर भी संकेत है।
2. साधन पाद : यह क्रिया योग (प्रायोगिक) है। इसमें योग कैसे किया जाए, इस पर प्रकाश डाला गया है।
3. विभूति पाद : इस अध्याय में योग की विभूतियाँ अर्थात् सिद्धियों का वर्णन है।
4. कैवल्य पाद : इस अध्याय में आत्मा तथा परमात्मा का एक होना बतलाया गया है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(1) योग का उद्देश्य

अथ योगानुशासनम् ॥1॥

अथ - अब आरम्भ करते हैं। योग - योग, अनुशासन-शिक्षा।

अथ - आरम्भ करना तथा मंगलमय भगवान।

योग : वह विद्या जिसके द्वारा आत्मा और परमात्मा का एक होना हो।

अनुशासन : उस शिक्षा को कहते हैं जिसमें चार प्रकार का वर्णन (1) लक्षण (2) भेद (3) उपाय (4) फल। योग के सम्बन्ध में, योग का लक्षण क्या है ? योग कितने प्रकार का होता है ? योगी बनने के उपाय क्या हैं ? योगी बनने में फल क्या है ? इस प्रकार इन चारों चीजों को, जिस विद्या में पाया जाए, उस विद्या को अनुशासन कहते हैं।

(2) चित्त की पाँच अवस्थाएँ होती हैं

(1) मूढ़ (2) क्षिप्त (3) विक्षिप्त (4) एकाग्र (5) निरुद्ध।

(1) मूढ़ अवस्था : इसमें तमो गुण की प्रधानता रहती है। रजो गुण तथा सतोगुण दबे होते हैं। मूढ़ अवस्था में ही

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

काम, क्रोध, लोभ, मोह, हिंसा, अन्याय तथा पाप होता है। इस हेतु मूढ़ अवस्था वाले मनुष्य, चित्त एकाग्र नहीं कर सकते न योगी बन सकते हैं।

(2) क्षिप्त अवस्था : इस अवस्था में रजोगुण प्रधान होता है। इसी अवस्था में राग-द्वेष, ज्ञान-अज्ञान, पाप-पुण्य मिश्रित रूप से चलते हैं। यह अवस्था साधारण आदमी की होती है। इस अवस्था में भी योग नहीं होता।

(3) विक्षिप्त अवस्था : इसमें सतोगुण अधिक होता है। तमो तथा रजोगुण दबे होते हैं। इसी अवस्था में मनुष्य अपनी आत्म-उन्नति के विषय में सोचने लगता है। लोभ, मोह राग, द्वेष को भी दूर करने को सोचता है और उसकी प्रवृत्ति, ज्ञान, धर्म, वैराग्य की तरफ होने लगती है। यह उपरोक्त तीनों अवस्थाएँ चित्त की चंचल अवस्थाएँ होती हैं जिसमें साधक को ध्यान नहीं लगता है। ये अवस्थायें चित्त की स्वाभाविक अवस्थायें नहीं है।

(4) एकाग्र अवस्था : विक्षिप्त अवस्था में जब चित्त सात्विक हो जाता है और धर्म तथा वैराग्य की तरफ प्रवृत्ति हो जाती है तो एकाग्रता शुरू होने लगती है। इसी से राज योग तथा ध्यान योग आरम्भ होता है। यह स्वाभाविक अवस्था है। इस अवस्था में सम्प्रज्ञात समाधि लगती है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

(5) निरुद्ध अवस्था : इसमें योग परिपक्व अवस्था में पहुँच जाता है। योगी को अपना सुध-बुध तक नहीं रहता है। एकाग्र में योगी को यह ध्यान रहता है कि वह समाधि में है परन्तु निरुद्ध में ऐसी तल्लीनता होती है कि योगी को किसी प्रकार का ज्ञान नहीं रहता है। इसलिए इसको असम्प्रज्ञात अथवा निर्वीज समाधि कहते हैं।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः !!2!!

योग + चित्तवृत्ति + निरोधः

योग चित्त की वृत्ति (चंचलता अथवा धारा) को रोकने का नाम है। यह सूत्र परिभाषा का सूत्र है। जो चित्त की वृत्तियाँ सांसारिक विषयों में लग रही हैं उनको बाहरी विषयों से हटाकर उनको उलटा अन्तर्मुख करना है और चित्त को अपने स्वाभाविक रूप में लाना है।

तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् !!3!!

तदा - चित्त की वृत्तियाँ निरोध होने पर।

द्रष्टुः - द्रष्टा आत्मा, स्वरूपे-अपने स्वरूप में, अवस्थानम् स्थित होती है।

भावार्थ : चित्त की वृत्तियाँ निरोध होने पर आत्मा,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

परमात्मा में अवस्थित हो जाता है। जब तक यह अवस्था नहीं आती तब तक आत्मा अपने को कर्त्ता तथा संसार की उपाधियों से बँधा समझता है परन्तु निरोध अवस्था में सभी बन्धनों को काटकर (जैसे मैं सुखी हूँ, दुःखी हूँ) इत्यादि भावनाओं को छोड़कर अपनी स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त कर लेता है।

नोटः- योग में द्रष्टा, पुरुष, चित्तशक्ति, हक् शक्ति, चेतन, आत्मा ये सब एक ही अर्थ में प्रयोग आये हैं। भ्रम के लिए योग शब्द में अध्यास, उपाधि, आरोप, प्रयोग में आते हैं।

वृत्तिसारूपयमितरत्र।।4।।

वृत्ति+ सारूप्यम् + इतः + अत्र।

वृत्तियों की समान रूपता में दूसरी चंचलता होती है।

भावार्थ :- जब आत्मा निरोध अवस्था से भिन्न दूसरी चंचल अवस्था में रखता है तो चित्त की वृत्तियों के साथ उसकी एकरूपता होती है अर्थात् जैसे-जैसे चलती है, आत्मा उन्हीं का अनुगामी समझता है।

वृत्तयः पञ्चतयः क्लिष्टाक्लिष्टाः।।5।।

वृत्तय :- वृत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं जो कि दो भागों में बँटी हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

1. क्लिष्ट 2. अक्लिष्ट

1. क्लिष्टः- वह वृत्तियाँ हैं जो कि क्लेशों को उत्पन्न करती हैं।

2. अक्लिष्ट :- जो कि दुःखों का नाश करती हैं।

सतोगुण प्रधाान वृत्तियाँ अक्लिष्ट वृत्तियाँ हैं।

उनसे क्लेशों का नाश होता है। और तमोगुण प्रधान वृत्तियाँ क्लिष्ट वृत्तियाँ है। उनसे दुःख पैदा होते हैं। क्लिष्ट वृत्तियों को नाश करने के लिए, अक्लिष्ट वृत्ति अपनाना चाहिए। वृत्तियों का यह स्वभाव है कि वे अपने समान या प्रकार ही संस्कार उत्पन्न करती है। अर्थात अक्लिष्ट वृत्तियाँ अक्लिष्ट संस्कार अथवा सात्विक संस्कार उत्पन्न करेंगी। और क्लिष्ट वृत्तियाँ तामसी संस्कार उत्पन्न करेंगी।

प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः॥6॥

इस सूत्र में उपरोक्त सूत्र नं0 5 में बताये गये पाँच प्रकार की वृत्तियों का नाम बताया गया है।

प्रत्यक्षानुमानाऽऽगमाः प्रमाणानि ॥7॥

प्रमाण किसे कहते हैं ?

प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम तीन प्रकार के प्रमाण होते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रमाण का अर्थ होता है ज्ञान। जैसे मैं देखता हूँ। सुनता हूँ। इस प्रकार के यथार्थ ज्ञान को बोध भी कहते हैं। यथार्थ ज्ञान को जैसे प्रभा कहते हैं। वैसे ही अयथार्थ ज्ञान को अप्रभा कहते हैं। जिस वृत्ति से यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है, उस वृत्ति का नाम प्रमाण है। ऊपर बतलाया गया है कि तीन प्रमाण होते हैं।

प्रत्यक्ष प्रमाण :- जैसे आँख, कान आदि इन्द्रियों से जब देखना और सुनना ठीक-ठीक हो जाता है, इसको प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं। नासिका से गन्ध, रसना से रस अथवा स्वाद, आँख से रूप, त्वचा से स्पर्श और श्रोत्र से शब्द, इस प्रकार पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ अपने-अपने विषय को ठीक रूप से ग्रहण करती हैं तब प्रत्यक्ष प्रमाण होता है।

अनुमान :- इस प्रमाण में किसी लिंग अथवा चिन्ह के सहारे ज्ञान प्राप्त किया जाता है। जैसे-जहाँ धुआँ होता है वहाँ आग होती है। अगर पर्वत पर धुआँ उठते हुए देखते हैं तो बिना अग्नि के देखे ही अनुमान कर लेते हैं कि जब पर्वत पर धुआँ है, वहाँ आग जरूर होगी। अनुमान प्रमाण पहले मूल रूप से प्रत्यक्ष किये हुए ज्ञान के ऊपर ही आधारित है। क्योंकि जब पहले हम लोगों ने धुआँ और अग्नि को देख लिया है तब ही धुआँ को देखते ही अग्नि का अनुमान कर लेते हैं। परन्तु यदि इन्द्रिय में कोई दोष हो तो प्रत्यक्ष ठीक से नहीं हो पाता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

जैसे किसी को कामला या पीलिया आदि हुआ हो तो सफेद कागज भी उसे पीला ही नजर आयेगा। अतः कागज का प्रमाण प्रत्यक्ष नहीं हुआ क्योंकि देखने वाले को पीलिया हुआ है। इस प्रकार के दोष को भ्रान्ति दोष कहते हैं। यह दोष तीन कारण से होता है।

1. विषय दोष :- अर्थात् विषय अथवा वस्तु इतनी दूरी पर हो कि साफ दिखाई न दे।

2. इन्द्रिय दोष :- ज्ञान ग्रहण करने वाली इन्द्रियों में ऐसा दोष हो कि विषय ठीक-ठीक नजर न आये। जैसे बहरे को ठीक-ठीक शब्द का न सुनायी पड़ना।

3. मनो दोष :- अर्थात् मन इतना चंचल हो कि विषय को ठीक-ठीक ग्रहण न कर सके।

आगम प्रमाण :- इस अलौकिक संसार में जहाँ मनुष्य को ज्ञान नहीं है वहाँ वेद-शास्त्र, सन्त, महात्मा, ज्ञानी पुरुषों के वचनों का ही विश्वास करके चलना पड़ता है। इस प्रकार के ज्ञान को आगम अथवा शब्द प्रमाण कहते हैं।

विपर्ययी मिथ्या ज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्॥8॥

विपर्यय+ मिथ्याज्ञानम्+ अतद्रूप+ प्रतिष्ठम्।

विपर्यय- असत् ज्ञान जो उसके असली रूप में प्रतिष्ठित

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

न हो। अर्थात् विपर्यय वह झूठा ज्ञान है जिसमें किसी वस्तु के वास्तविक स्वरूप का प्रकाशन नहीं होता है। जैसे किसी मनुष्य को अन्धेरे में पड़ी हुई रस्सी सर्प ज्ञात हो अथवा किसी को सागर तट पर पड़ी हुई सीप की चमक चाँदी मालूम हो ही हो। वह असली स्वरूप का प्रकाशन होना नहीं हुआ। ऐसे मिथ्या ज्ञान को विपर्यय ज्ञान कहते हैं। दूसरे शब्दों में वस्तु कुछ और हो, ज्ञान कुछ और हो वही मिथ्या ज्ञान या विपर्यय ज्ञान है। इसी विपर्यय नाम की चित्त की वृत्ति को अविद्या भी कहते हैं।

शब्द ज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ॥ ९॥

शब्द+ ज्ञानः + अनुपातीः + वस्तु शून्यः + विकल्पः।

शब्द से उत्पन्न होने वाले ज्ञान के पीछे चलने वाले स्वभाव को जहाँ कोई वस्तु उपस्थित नहीं है, ऐसी वृत्ति को विकल्प कहते हैं। अर्थात् विकल्प उस वृत्ति को कहते हैं जिसमें कोई वस्तु नहीं हो। केवल शब्द के आधार पर ज्ञान होता हो। विकल्प वृत्ति प्रमाण और विपर्यय से भिन्न है क्योंकि प्रमाण वृत्ति में कोई–न–कोई वस्तु होती है जिसको प्रत्यक्ष या अनुमान से समझा जाता है। विपर्यय वृत्ति में भी कोई न कोई वस्तु होती है। परन्तु उसका मिथ्या ज्ञान हो जाता है। जैसे रस्सी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

को साँप समझ लेते हैं। परन्तु विकल्प में कोई वस्तु नहीं होती। केवल शब्द से ज्ञान प्राप्त करते हैं। जैसे कोई कहे कि पुरुष का चैतन्य रूप है। वास्तव में चैतन्य ही पुरुष है। ऐसा न होने पर भी पुरुष का चैतन्य रूप है। यह व्यवहार में होता है। साधारण लोगों की बुद्धि में जो बाधा होती है वह विपर्यय वृत्ति है। परन्तु जो विद्वानों की बुद्धि में बाधा पड़ती है, उसे विकल्प समझना चाहिए। जैसे सभी विद्वान जानते हैं कि चैतन्य और पुरुष एक ही है तो भी व्यवहार में पुरुष का चैतन्य रूप है, ऐसा कहते हैं।

अभाव प्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ॥ 10॥

अभाव प्रत्यय+ आलम्बन + वृत्तिर्निद्रा।

अर्थात जागृति और स्वप्न की अवस्था में ज्ञान का अनुभव कराने वाली वृत्ति को निद्रा कहते हैं। कई आचार्य निद्रा को वृत्ति नहीं मानते परन्तु योग के आचार्य गण आत्मस्थिति को छोड़कर शेष चित्त की सारी अवस्था को वृत्ति मानते हैं। जागृति अवस्था में रजोगुण प्रधान होता है। जहाँ रजोगुण प्रधान होता है वहाँ क्रिया प्रधान होती है। तमोगुण में आलस्य की प्रधानता होती है। इस प्रकार रजोगुण की चंचलता और तमोगुण का आलस्य दोनों ही योग के साधन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust, Funding-IKS-MoE-Grant-2

के लिए अतिविघ्न है। इस हेतु जागृति और स्वप्न अवस्था के अनुभवों को महर्षि ने योग के क्षेत्र से निराकरण कर दिया है।

अनुभूत विषयाऽ सम्प्रमोषः स्मृतिः ॥11॥

अनुभूत विषयः + असम्प्रमोषः + स्मृतिः ॥

अनुभव किया हुआ किसी विषय का नहीं चुराया जाना स्मृति है। अर्थात् : स्मृति (यादगारी) उस वृत्ति को कहते हैं जिसमें इन्द्रियों के द्वारा अनुभव किए हुए विषयों का छुपाया जाना सम्भव न हो। अर्थात् जिन विषयों का हम लोगों ने अनुभव किया हो वह समय आने पर अथवा अनुकूल परिस्थिति में फिर जाग उठे ऐसे पुनः जगे हुए संस्कार को स्मृति कहते हैं।

स्मृति वृत्ति के अन्तर्गत वे सभी अनुभव आ जाते हैं जो उपरोक्त स्मरण प्रमाण विपर्यय विकल्प द्वारा जागृति अवस्था में अनुभव हुआ हो उन सभी को नहीं भूलना स्मृति है। स्मृति का विषय अपनी अनुभूति से कम अथवा बराबर तो हो सकता है परन्तु अधिक कदापि नहीं।

स्मृति दो प्रकार की होती है – भावित स्मृतव्य, अभावित स्मृतव्य । इसमें मिथ्या पदार्थ विषय का ज्ञान होता है। जैसे स्वप्न में, इसमें यथार्थ विषय का ज्ञान होता है। जैसे जागृति में

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपरोक्त सात सूत्रों में महर्षि ने पाँचों प्रकार की वृत्तियों का निरूपण किया है। अब अगले सूत्र संख्या 12 में उनवृत्तियों का निरोध कैसे हो यह उपाय बतलाये हैं।

3. वृत्तियों के निरोध का साधन

अभ्यास वैराग्याभ्याम् तन्निरोधः।।12।।

अभ्यास और वैराग्य से उन वृत्तियों का निरोध होता है। गीता अध्याय 6 श्लोक 35 में भी है। चित्त के निरोध के जो दो उपाय बतलाये गये उनमें मनुष्य के बहिर्मुखी चित के प्रवाह को वैराग्य के द्वारा निरोध करते हैं। और अभ्यास के द्वारा आत्मा की ओर ले जाने वाले आन्तरिक प्रवाह को स्थिर किया जाता है। यदि कोई साधक यह समझे कि इन दोनों उपायों में से किसी एक से काम चल जायेगा अथवा उनमें से प्रत्येक को बारी-बारी करके साधने से वृत्तियों का निरोध होगा तो यह विचार पतंजलि को मान्य नहीं है। भावार्थः- तमोगुण के अधिकत्व से निद्रा, आलस्य, मूढ़ता इत्यादि उत्पन्न होती है जो कि साधक के लिए त्याज्य है। रजोगुण के अधिकत्व से मन अधिक चंचल होता है। मन की चंचलता भी साधक के लिए हानिकारक है। तमोगुण को नष्ट करने के लिए अभ्यास रूपी शस्त्र की आवश्यकता है जैसे यदि किसी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साधक को घोर निद्रा आती हो तो उसे चाहिए वह ब्रह्ममुहूर्त में उठने का अभ्यास करे। अभ्यास के द्वारा वह निश्चय प्रातः काल उठने लगेगा। इस प्रकार निद्रा जो तमोगुणी प्रवृत्ति है वह अभ्यास के द्वारा हटायी जा सकती है। मन अति चंचल है जो रजोगुण की अधिकता से उपस्थित है। वैराग्य के द्वारा मन को विषयों से हटाया जा सकता है। इस प्रकार मन की चंचलता को वश में किया जाता है। महर्षि का इस सूत्र में यही कहने का अभिप्राय है कि रजोगुण और तमोगुण को नष्ट करने के लिए अभ्यास और वैराग्य रूपी शस्त्र की आवश्कता है। इसी हेतु भगवान कृष्ण ने भी अर्जुन के मन की चंचलता सम्बन्धी प्रश्न के उत्तर में मन को रोकने में इन्हीं दो उपायों का निर्देश किया है।

योग के आठ अंग होते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। इन्हीं आठों के कारण राजयोग को अष्टांग योग कहते हैं। इस राजयोग के दो भाग हैं - वहिरंग योग, अन्तरंग योग। पहले पाँच यम से लेकर प्रत्याहार तक वहिरंग योग हैं। अर्थात् इनका सम्बन्ध बाहर के विषयों से है। शेष तीन अंग अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि ये अन्तरंग योग हैं। बहिरंग अंग को अभ्यास की सहायता से सिद्ध किया जाता है। अन्तरंग योग को वैराग्य की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सहायता से प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार हमें प्रत्यक्ष हो गया कि सम्पूर्ण अष्टांगयोग की सिद्धि के लिए अभ्यास और वैराग्य दो साधन हैं। इन दोनों साधनों में अभ्यास किसको कहते हैं? यह अगले सूत्र नं0 13 में बलता रहे हैं।

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः॥13॥

तत्र उन दोनों में से, स्थितो + चित की स्थिति अथवा स्थिर करने में यत्न करना। अभ्यासः अभ्यास कहलाता है।

अर्थात चित्त की चंचलता को स्थिर करने के लिए जो यत्न किया जाता है वही अभ्यास कहलाता है। चित्त की स्थिरता तभी सम्भव है जबकि चित्त की वृत्तियाँ, जो कि ऊपर हम पढ़ चुके हैं, शान्त हो जायँ। इन वृत्तियों को शान्त करने के लिये अभ्यास अनिवार्य है। अभ्यास के द्वारा दुष्कर कार्य भी सिद्ध हो जाते हैं।

अभ्यास भी साधारण योग के लिए इच्छित नहीं है। योगी को किस प्रकार के अभ्यास की आवश्यकता है, यह अगले सूत्र नं014 में स्पष्ट रूप से बतला रहें हैं।

एतु दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कारासेवितो दृढ़भूमिः॥14॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

सः- वह अभ्यास तु किन्तु दीर्घकाल बहुत समयतक नैरन्तर्य निरन्तर सत्कार सेवन किया हुआ दृढ़भूमि दृढ़ अवस्था को प्राप्त होता है।

दूसरे शब्दों में अभ्यास बहुत दिनों तक लगातार श्रद्धापूर्वक करते रहने से योगी अभ्यास के द्वारा अपने लक्ष्य तक पहुँच सकता है। यह महर्षि के अभ्यास को पक्का करने के लिए तीन विशेषण लगाये हैं।

1. अभ्यास दीर्घ काल तक हो।
2. अभ्यास निरन्तर तथा लगातार हो।
3. अभ्यास सत्कार से किया जाय।

1. अभ्यास दीर्घ काल तक हो इसका अभिप्राय यह है कि साधक को अभ्यास काल में शीघ्रता नहीं करनी चाहिए। अभ्यास की सिद्धि जो लोग पूर्वजन्म के संस्कारी हैं उनको योग की सिद्धि अभ्यास के द्वारा शीघ्र होती है। परन्तु जो लोग साधारण हैं पर्याप्त समय तक अभ्यास करते रहने का धैर्य होना चाहिए। यदि वे धैर्य खो देंगे तो अभ्यास कदापि पूरा नहीं हो सकता। इसलिए पतंजलि ने दीर्घ काल तक अभ्यास करने को लिखा है।

2. अभ्यास यदि दीर्घ काल तक हो परन्तु निरन्तर अथवा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगातार नहीं चलाया जाये तो भी लाभ दायक नहीं होगा। जैसे कोई साधक दस वर्ष तक अभ्यास करता रहा तो यह दीर्घ काल तो हुआ परन्तु यदि वह बीच-बीच में दो मास अभ्यास करके 3 मास छोड़ता रहा तो यह लगातार अभ्यास नहीं हुआ। इस प्रकार का अभ्यास पक्का नहीं हो सकता। इसीलिए साधकों को पतंजलि जी ने सावधान कर दिया कि अभ्यास दीर्घ काल तक हो परन्तु लगातार होता रहे।

3. सत्कार से सेवन किया हुआ अभ्यास ही पक्का हो जाता है। इसका मतलब यह है कि श्रद्धा से अभ्यास किया जावे। यदि श्रद्धा न हो तो साधक दीर्घकाल तक निरन्तर चल ही नहीं सकता। इसीलिए महर्षि ने यह आवश्यक समझा कि अभ्यास पूर्ण हो इसलिए श्रद्धा, भक्ति, साहस, ब्रह्मचर्य का उत्साहपूर्वक अभ्यास किया जाये।

चित्त की वृत्तियों का निरोध करने के जो दो उपाय अभ्यास और वैराग्य महर्षि ने बतलाये हैं उनमें से अभ्यास के विषय में हम सविस्तार जान गये। अब अगले सूत्र में वैराग्य के विषय में योगिराज बतला रहे हैं। वैराग्य दो प्रकार का होता है। 1. अपर वैराग्य 2. पर वैराग्य।

अगले सूत्र नं. 15 में महर्षि अपर वैराग्य के विषय में बतला रहे हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

दृष्टाऽऽनुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्॥15॥

दृष्ट+अनुश्रविक + विषय + वितृ्ष्णस्य+ वशीकार संज्ञा+ वैराग्यम।

दृष्ट- देखा हुआ, अनुश्रविक सुना हुआ, विषय-विषय वितृष्णस्य तृष्णारहित होना वशीकार नाम वाला संज्ञा वैराग्य है।

अर्थात वशीकार नाम का अपर वैराग्य उसको कहते हैं जिससे देखे हुए और सुने हुए विषयों में लेश मात्र तृष्णा अथवा राग न रह जाय।

विषय दो प्रकार के होते हैं। 1. दृष्ट अर्थात् जो दृष्टि गोचर हो। रूप, रस, गन्ध स्पर्श- अनुश्रविक यह वह विषय है जो कि कान से सुना गया हो, जैसे गुरु-वचन, वेदशास्त्र, द्वारा सुने गये ज्ञान। इन दोनों प्रकार के विषयों से जब योगी अपने चित्त को हटा लेता है तब वह स्थिर चित्त वाला हो जाता है। देखे और सुने सम्पूर्ण चित्त को चंचल करने वाले विषय से जब योगी मन को पृथक कर लेता है, तो अपरवैराग्य की प्राप्ति हो जाती है। इसी अपर वैराग्य का दूसरा नाम वशीकार भी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वैराग्य के चार नाम होते हैं।

1. यतमान 2. व्यतिरेक 3. एकेन्द्रिय 4. वशीकार

1. यतमानः- उस वैराग्य को कहते हैं जिसमें साधक अपने मन में उपस्थित राग-द्वेष पर बार-बार विचार करता है और यत्न करता है कि उसका चित्त दोषों से पृथक हो जाये।

2. व्यतिरेक :- उस वैराग्य को कहते हैं जिसमें साधक ने बार-बार यत्न करके अपने दोषों को हटाना आरम्भ कर दिया है और उसे अब ज्ञात होता है कि हमारे अब इतने दोष हट गये हैं। इतने शेष हैं। और इन्हें भी हटाना है।

3. एकेन्द्रिय :- उस वैराग्य को कहते हैं जब कि सारी इन्द्रियों से किये गये अशुभ कर्म समाप्त हो गये हों परन्तु मन में राग-द्वेष, पापाचरण का समय-समय पर उदय हो जाता है और योगी मन को अभी वश में करने के लिए यत्न कर रहा हो।

4. वशीकार :- यह वैराग्य सर्वश्रेष्ठ है। इसमें इन्द्रिय और मन दोनों वश में हो जाते हैं। योगी की लालसा न तो सांसारिक धन-वैभव के ही प्रति रहती है न तो यौगिक सिद्धियों के प्रति। इस प्रकार पूर्ण रीति से वश में किया गया चित्त वशीकार नाम वाला कहा जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

वशीकार वैराग्य ऊपर के तीनो वैराग्यों को क्रमशः समाप्त करने के पश्चात् ही प्राप्त होता है। इसका दूसरा नाम अपर वैराग्य है। यह वैराग्य साधक को सम्प्रज्ञात समाधि तक पहुँचा देता है। इसी अवस्था में विवेक ख्याति नाम का विशेष ज्ञान उत्पन्न होता है जो पुरुष और चित्त की भिन्नता को स्पष्ट रूप से बतलाता है। परन्तु यह भी एक प्रकार की वृत्ति है। इसलिए चित्त की इस वृत्ति का भी निरोध करना पड़ता है। और इस वृत्ति से भी मुक्त हो जाना 'पर वैराग्य' कहलाता है यह पर वैराग्य ही योग का अन्तिम लक्ष्य है। इससे असम्प्रज्ञात समाधि लगने लगती है। इस अवस्था में योगी की आत्मा और परमात्मा की पूर्णरूप एकता हो जाती है। अब ग्रन्थकार अगले सूत्र में पर वैराग्य की व्याख्या करेंगे।

तत्परं पुरुषख्याते र्गुण वैतृष्ण्यम्।। 16।।

तत्+परम+पुरुषख्याते+गुण+वैतृष्ण्यम्।

ततः वह, परम सबसे ऊँचा, पुरुष और प्रकृति के भेद को बतलाने वाला जिसे विवेक ख्याति कहते हैं, उसके उदय होने पर गुणों से तृष्णा रहित हो जाता है। अर्थात् पर वैराग्य उस वैराग्य को कहते हैं जिसमें योगी प्रत्यक्ष रूप से पुरुष और प्रकृति की भिन्नता को समझते हुए तीनों प्रकार के सत् रज्

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तम गुणों से अलग हो जाता है। उसकी तृष्णा किसी प्राकृतिक वस्तु अथवा गुणों में लेशमात्र की नहीं रहती है। अर्थात् प्रकृति से भी वह सम्बन्ध तोड़ लेता है।

इस अवस्था में असम्प्रज्ञात समाधि लगती है। अपर वैराग्य में योगी तीनों प्रकार के गुणों को त्यागने का संकल्प करता है। दृष्ट और अनुश्रविक विषयों से अपने को पृथक करने लगता है उस समय उसे सम्प्रज्ञात नाम की समाधि लगने लगती है। परन्तु सम्प्रज्ञात समाधि योग का लक्ष्य नहीं है। योग का अन्तिम लक्ष्य असम्प्रज्ञात समाधि है जो विवेक ख्याति नामक विशेष बुद्धि के उत्पन्न होने के पश्चात् प्रकृति से सम्बन्ध तोड़ने के पश्चात् पर वैराग्य द्वारा होती है। विवेक ख्याति को योग की भाषा में कहीं-कहीं पुरुष ख्याति सत्वपुरुष अथवा ख्याति भी कहते हैं।

इस पर वैराग्य के उदय होने पर जब योगी की असम्प्रज्ञात समाधि लगने लगती है तब वह धर्म मेघ समाधिनिष्ठि योगी कहलाने लगता है। अब योगी को पंचक्लेशों में से कोई कष्ट नहीं दे सकता। उसके संसार का वह चक्र टूट गया जिसके द्वारा जन्म-मृत्यु हुआ करती है।

इस प्रकार चित्त की वृत्तियों का निरोध करते-करते अभ्यास और वैराग्य के द्वारा जब साधक सम्प्रज्ञात समाधि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तक पहुँच जाता है तो निम्नलिखित चार प्रकार की समाधियों में से क्रम से एक-एक को पार करके तत्पश्चात् असम्प्रज्ञात समाधि का अधिकारी बनता है जो अगले सूत्र नं0 17 में बतलाया जायेगा।

4. समाधि के भेद

वित्तर्कविचारानन्दास्मिता रूपानुगमात् सम्प्रज्ञातः ॥17॥

वितर्क+ विचार+ आनन्द+ स्मिता+ रूप+ अनुगमात्+ सम्प्रज्ञातः।

अर्थ :- वितर्क विचार आनन्द स्मिता नामक स्वरूपों के सम्बन्ध से जो चित्त की वृत्तियों का निरोध होता है वह सम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। सूत्र में शब्द सम्प्रज्ञात आया है उसके आगे शब्द समाधि लिखित नहीं है। परन्तु उसे जोड़कर ही अर्थ की स्पष्टता हो सकेगी।

भावार्थ :- यह है कि सम्प्रज्ञात् समाधि जैसा ऊपर लिख आये हैं - चार प्रकार की होती है। जैसे - 1. वितर्क के आधार पर जो समाधि प्राप्त की जायेगी उसको वितर्कानुगत सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। 2. जो समाधि विचार के सम्बन्ध

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

से प्राप्त होगी उसे विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि कहेंगे।

3. जो समाधि आनन्द के आधार पर होगी उसे आनन्दानुगत समाधि कहेंगे। 4. जो समाधि स्मिता के आधार पर होगी उसे स्मितानुगत सम्प्रज्ञात समाधि कहेंगे।

इन चारों प्रकार के सम्प्रज्ञात समाधि के विषय में संक्षेप में आगे वर्णन होगा। उपरोक्त चारों प्रकार की समाधियाँ प्राकृतिक हैं। अर्थात् प्रकृति के स्थूल भाग से लेकर अति सूक्ष्म भाग स्मिता तक की वस्तुओं से सम्बन्ध रखती हैं।

(1) वितर्कानुगत समाधि- इस समाधि में स्थूल विषय जैसे सूर्य, चन्द्र इत्यादि को स्थूल इन्द्रियों के द्वारा चित्त को ठहराया जाता है और जब ध्यान उस स्थूल वस्तु में लगने लगता है तो जो उसमें दिव्य भाव है जो पहले अप्रकट था वह सब प्रकट हो जाते हैं। वितर्कानुगत समाधि दो प्रकार की होती है। सवितर्क, निर्वितर्क, इनके सम्बन्ध में आगे पढेंगे।

(2) विचारानुगत समाधि :- इस समाधि मे योगी स्थूल विषयों से आगे बढ़ जाता है। वह सूक्ष्म वस्तुओं को सूक्ष्म इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करने लगता है। इस अवस्था में इन्द्रियों की छिपी हुई शक्तियाँ पाँचों तन्मात्रा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द का साक्षात् करती हैं। यह विचारानुगत समाधि भी दो प्रकार की होती है। सविचार, निर्विचार। इनके बारे में आगे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

पढ़ेंगे।

(3) आनन्दानुगत समाधि :- विचारानुगत से भी आगे बढ़ने के बाद इतना अभ्यास बढ़ाया जाये कि इन्द्रियों की छिपी शक्तियाँ और तन्मात्राओं से आगे बढ़कर अहंकार को साक्षात् किया जाय। उस समय जो महान आनन्द प्राप्त होता है, उसको आनन्दानुगत समाधि कहते हैं। इस समय योगी यह अनुभव करता है कि वह आनन्द में डूबा है। वह कहता है मैं दुखी नहीं सुखी हूँ अथवा मैं सदासुखी हूँ।

(4) स्मितानुगत समाधि :- आनन्दानुगत से आगे बढ़ने के बाद स्मितानुगत समाधि की प्राप्ति होती है। स्मिता तक पहुँचने में पर्याप्त समय लग जाता है। जहाँ से पुरुष (जीव) के चित्त में अभिन्नता आरोप होती है। उसी का नाम स्मिता है। उस अवस्था, जिसमें आत्मा और चित्त नित्ययुक्त प्रतीत होते हैं, को स्मितानुगत समाधि कहते हैं। स्मिता में ही अहंकार उत्पन्न होता है। इसलिए स्मितानुगत समाधि आनन्दानुगत समाधि से अधिक सूक्ष्म और शक्तिशाली है। इस अवस्था में योगी मैं सुखी हूँ, के बदले में यह कहता है सब कुछ मैं ही हूँ। ये चारों प्रकार की समाधियाँ सालम्बन और सबीज समाधि भी कहलाती हैं क्योंकि प्रकृति रूप आलम्बन अथवा बीज इस समाधि में उपस्थित है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विरामप्रत्ययाभ्यास पूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः ॥ 18॥

विराम+ प्रत्यय+ अभ्यासपूर्व+ संस्कार+शेषो+ अन्यः।

सर्व वृत्तियों का निरोध + कारण (परवैराग्य) + बार-बार अभ्यास करने से जो संस्कार बच जाता है वह + दूसरा (अर्थात दूसरे प्रकार की असम्प्रज्ञात समाधि)

अर्थात् सर्ववृत्तियों के निरोध का कारण जो पर वैराग्य है उसको बार-बार अभ्यास करने से उसका संस्कार जब चित्त पर पड़ जाता है तब असम्प्रज्ञात समाधि लगती है परन्तु उस समाधि में प्राकृतिक वस्तुओं का आलम्बन अथवा सहारा रहता है। परन्तु जब योगी अपर वैराग्य से आगे बढ़ जाता है तब पर वैराग्य जो वैराग्य की अन्तिम श्रेणी है उसको प्राप्त कर लेता है। इसी पर वैराग्य से अन्तिम समाधि जिसे असम्प्रज्ञात समाधि कहते है, लगने लगती है।

5. समाधि की सिद्धि के दर्जे

भव प्रत्ययो विदेह प्रकृतिलयानाम ॥ 19 ॥

भव+प्रत्यय+ विदेह+ प्रकृति + लयानाम।

भाव यह है कि सम्प्रज्ञात समाधि में अपर वैराग्य द्वारा समाधि लगती है। जन्म से + प्रतीति अथवा ज्ञान + विदेह और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रकृतिलय श्रेणी के योगियों की होती है।

अर्थात् – विदेह और प्रकृतिलय अवस्था में जो योगी पहुँच जाते हैं परन्तु कैवल्य अथवा असम्प्रज्ञात समाधि तक नहीं पहुँच पाये और उनकी मृत्यु हो गई तो अगले जन्म में जन्म से ही असम्प्रज्ञात समाधि का ज्ञान रखने लगते हैं। सूत्र संख्या 17 में जो वितर्कानुगत विचारानुगत सम्प्रज्ञात समाधि यों का वर्णन हो चुका है उस अवस्था तक यदि कोई योगी पहुँच जाता है तो उसी को विदेह कहते हैं। इससे आगे बढ़ने पर आनन्दानुगत और स्मिता नुगत समाधियों में जो योगी प्रवेश कर जाते हैं वे ही प्रकृतिलय योगी कहे जाते हैं। तो ऊपर के सूत्र का भाव यह है कि जो योगी विदेह और प्रकृतिलय अवस्था में अर्थात् वितर्कानुगत से लेकर स्मितानुगत तक पहुँचते हैं, जो सम्प्रज्ञात समाधि है वहीं तक पहुँच कर यदि योगी भ्रष्ट हो जाते हैं तो उनको अगले जन्म में फिर इन चारों प्रकार की समाधियों का अभ्यास नहीं करना पड़ता है। और वे माता के गर्भ से उत्पन्न होते ही विलक्षण प्रतिभा युक्त होते हैं और वे अल्प आयु में ही अच्छे योगी बन जाते हैं। और बिना अधिक परिश्रम के ही सम्प्रज्ञात समाधि से असम्प्रज्ञात समाधि में प्रवेश कर जाते हैं। गीता के अध्याय 6 में इसी प्रकार का वर्णन योगिराज श्री कृष्ण ने श्लोक नं0 40 से 44

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तक में किया है।

श्रद्धावीर्यस्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥20॥

श्रद्धा+ वीर्य+स्मृति+समाधि+प्रज्ञा+पूर्वक इतरेषाम्।

अर्थात दूसरे प्रकार के साधुओं का मार्ग है।

अर्थात्– दूसरे प्रकार के साधक जो विदेह और प्रकृतिलय योगियों के समान पूर्वजन्म के संस्कारी नहीं है, उनके लिए इस सूत्र में पाँच प्रकार के उपाय बताये गये हैं। साधारण व्यक्ति निम्नलिखित पाँच प्रकार के उपाय के द्वारा असम्प्रज्ञात समाधि तक पहुँच सकते हैं।

श्रद्धा– योग के विषय में विश्वास और प्रसन्नता के साथ अभ्यास के साथ प्रसन्न रहना श्रद्धा है।

वीर्य – साधना करने में उत्साह और शक्ति से कामलेना वीर्य है।

स्मृति – पूर्वजन्म के जो सात्विक अक्लिष्ट कर्म किये गये हैं, उन सब संस्कारों का जाग जाना स्मृति है।

समाधि – पहले बतलाये गये अक्लिष्ट कर्म और ज्ञान के संस्कार जब साधक में जग जाते हैं तो चित्त एकाग्र होने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

लगता है। इस एकाग्रता का बार-बार अभ्यास करने से ध्यान और समाधि लगने लगती है।

प्रज्ञा - प्रज्ञा का अर्थ ऋतम्भरा प्रज्ञा अर्थात् विवेक ज्ञान। समाधि लगने पर एक प्रकार का विशेष ज्ञान उत्पन्न होता है, जिसके द्वारा सभी वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप का दर्शन होने लगता है। इसे बार-बार अभ्यास करने से पर वैराग्य उत्पन्न होता है। और पर वैराग्य से असम्प्रज्ञात समाधि लगने लगती है। इस प्रकार जो साधारण व्यक्ति योग साधना करना चाहे तो वे उन्हें उपरोक्त पाँच प्रकार के उपायों के अपनाने से असम्प्रज्ञात समाधि तक पहुँच सकते हैं। ऊपर बताये गये श्रद्धा इत्यादि पाँच प्रकार के उपाय पूर्व जन्म के किए हुए कर्मों के आधार पर तीन प्रकार के होते हैं। मृदु, मध्य, अधिमात्र अर्थात् कोई साधक मृदु (मन्द) गति से साधना करता है। कोई साधक मध्य (सामान्य) गति से साधना करता है कोई साधक अधिमात्र तीब्र गति से साधना करता है। इन तीन प्रकार के उपायो में दो के अतिरिक्त साधना के संवेग अथवा वैराग्य के भी तीन प्रकार के भेद होते हैं। वे भी मृदु संवेग, मध्य संवेग और अधिमात्र संवेग कहे जाते हैं। अधिमात्र को तीव्र भी कहा जाता है।

तीब्र संवेगानामासन्नः ॥ 21॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तीव्र+ संवेगानाम्+ आसन्न।

तीव्र संवेग वाले योगियों की शीघ्र समाधि लगती है। अर्थात् - इस सूत्र में इतना अंश और छिपा हुआ है कि अधिमात्र उपाय वाले तथा तीव्र संवेग वाले योगियों की समाधि शीघ्र लगती है। अर्थात् ऊपर लिखे हुए तीन प्रकार के उपाय और तीन प्रकार के संवेग वाले योगियों में जो अन्तिम अर्थात् तीव्र संवेगवान और तीव्र उपाय वाले होंगे उन्हीं को समाधि लाभ शीघ्र होती है। यहाँ पर ऋषि पतंजलि उपाय और संवेग के आधार पर नौ प्रकार के विभाजन करके यह बतला रहे हैं कि जो साधारण साधक जन्म से जिसको आगे का संस्कार नहीं है वह सूत्र संख्या 20 में बतलाये गये श्रद्धा वीर्य स्मृति इत्यादि पाँच प्रकार के उपायों को अपना कर समाधि की प्राप्ति करते हैं। परन्तु इस समाधि की प्राप्ति साधक के परिश्रम पर निर्भर करता है। सभी साधक एक ही प्रकार से समाधि नहीं प्राप्त करते। कोई साधारण गति से, कोई मध्यम गति से, कोई तीव्र गति से प्राप्त करता है। इसी विषय को महर्षि सूत्र संख्या 22में बतला रहे हैं कि जिस साधक का उपाय भी तीव्र हो और संवेग भी तीव्र हो उसकी समाधि शीघ्र लगेगी।

मृदुमध्याऽधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः ॥ 22॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मृदु+ मध्य+अधिमात्र+त्वात्+ततः+ अपि विशेषः।

अर्थ- मृदु मध्य अधिमात्र यह तीन भेद होने से उस मृदु और मध्य तीव्र संवेग वाले से भी इस अधिमात्र तीव्र संवेग वाले योगी की समाधि में लाभ है।

अर्थात्- सूत्र संख्या 21 में जो तीव्र संवेग बतलाया गया है वह भी तीन प्रकार का होता है। मृदु, मध्य और अधिमात्र अर्थात् मृदु तीव्र संवेग, मध्य तीव्र संवेग और अधिमात्र तीव्र संवेग। इस सूत्र में महर्षि बतला रहे हैं कि सूत्र सं. 21 में केवल तीव्र संवेग वाले जो योगी बतलाये गये हैं उनसे कहीं शीघ्र अधिमात्र तीव्र संवेग वाले योगियों की समाधि लाभ होती है।

ईश्वर प्रणिधानाद्वा ॥ 23॥

ईश्वर+प्रणिधानात्+वा।

ईश्वर प्रणिधान से शीघ्रतम समाधि लाभ होता है। इस सूत्र में महर्षि समाधि प्राप्त करने का साधारण साधकों के लिए दूसरे प्रकार का उपाय बतला रहे हैं। पहले वे बतला चुके हैं कि तीव्र उपाय वाले और तीव्र संवेग वाले योगियों का समाधि लाभ शीघ्र होता है। जो श्रद्धा इत्यादि पाँच प्रकार के बताये गये उपायों के ऊपर निर्भर करता है। अब इस सूत्र सं. 23 में ऋषि के कहने का अभिप्राय है कि समाधि लगने

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

का दूसरा उपाय ईश्वर प्रणिधान है। ईश्वर पाणिधान का अर्थ होता है हर प्रकार से अपने को ईश्वर के अधीन करके कर्मों को करते हुए रहना और उसके फलों को ईश्वर पर छोड़ देना। जिसे भक्ति विशेष भी कह सकते हैं। अब प्रश्न यह है कि जिस ईश्वर की हम लोग भक्ति करें उस ईश्वर का स्वरूप क्या है ? अगले सूत्र सं. 24 में ईश्वर के स्वरूप को बतलाया है।

6. ब्रह्मनिरूपण

क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरा मृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः॥ 24॥

क्लेश+कर्म+वियाक+आशैयः+अपरामिष्टः+ पुरूष।

विशेष ईश्वरः। कर्म शुभ अशुभ सभी प्रकार के कर्म

विपाक - कर्मों का फल, आशैय - कर्मों से उत्पन्न होने वाली वासनायें अथवा संस्कार, अपरामिष्ट - सम्बन्ध रहित पुरुष विशेष अर्थात पुरुष से भिन्न विशेष पुरुष, ईश्वर ईश्वर है। अर्थात् इस सूत्र में महर्षि ईश्वर की बड़ी सुन्दर परिभाषा दे रहे हैं। ऊपर बतला आये हैं कि जो योगी तीव्र और संवेग गति और उपाय से समाधि नहीं लगा सकते वे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ईश्वर की भक्ति से भी असम्प्रज्ञात समाधि तक पहुँच सकते हैं।

ईश्वर शरणागति देखने में सरल परन्तु बड़ा ही उत्कृष्ट उपाय है। अब प्रश्न होता है कि जिस ईश्वर की शरण में जाने की आज्ञा ऋषि दे रहे हैं, वह ईश्वर कैसा है। शिष्य के इस प्रश्न का उत्तर महर्षि सूत्र सं. 24 में ईश्वर के स्वरूप का निरूपण करके दे रहे हैं।

ईश्वर वह विशेष पुरुष है जो कि पाँचों प्रकार के क्लेशों से सब प्रकार के कर्मों से सब प्रकार के कर्मों के फलों-भोगों से और सब प्रकार के कर्मों से उत्पन्न होने वाले संस्कारों से एकदम सम्बन्ध रहित हो। भाव यह है कि ईश्वर को किसी प्रकार का दुःख नहीं होता। ईश्वर किसी प्रकार का कर्म नहीं करता, और न फल भोगता और न संस्कार ही बनता। इस सम्बन्ध में यह जान लेना उचित है कि जो यह प्रश्न उठता है कि ईश्वर और जीव में क्या भिन्नता है उसका उत्तर इसी सूत्र में हो जाता है अर्थात जीव को क्लेश भोगना होगा। कर्म करना, फल भोगना, कर्मों का संस्कार बनना। परन्तु ईश्वर में उपरोक्त चारों चीजें क्लेश, कर्म, कर्मफल और वासना एक भी नहीं होता।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञ बीजम् ।।25।।

तत्र+ निरतिशय+ सर्वज्ञबीजम।

उस ईश्वर में निरतिशय अर्थात अतिशय रहित, सर्वज्ञवीजम्-सर्वज्ञता का बीज है।

इस सूत्र में ईश्वर के एक अतिआवश्यक ओर महान गुण का वर्णन है जो सिवाय ईश्वर के दूसरे किसी प्राणी में है ही नहीं। वह है सर्वज्ञता का गुण। सर्वज्ञता का अर्थात सब काल में सब प्रकार के ज्ञानों को रखता है। जिस ज्ञान के बराबर या उससे अधिक ज्ञान हो उस ज्ञान को सातिशय ज्ञान कहते हैं। परन्तु जिसके ज्ञान के न कोई बराबर हो न अधिक हो सके उस निरतिशय ज्ञान कहते हैं। भाव यह है कि परमात्मा से न तो कोई बराबर, न कोई अधिक जीव हो सकता है।

पूर्वेषामपि गुरुः कालेनावच्छेरात ।।26।।

पूर्व उत्पन्न ब्रह्म आदि ऋषिमुनि, आदि भी, गुरू उपदेशक

कालेन - काल के द्वारा, अनवच्छेदात - परिमित। वह सर्वज्ञ ईश्वर ब्रह्म संसार के प्रथम प्राचीनतम् गुरुओं का भी गुरु है जो कि काल के द्वारा भी परिमित नहीं है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इस सूत्र में ऋषि के कहने का अभिप्राय है कि ईश्वर की शरणागति करने से सर्वज्ञ वह ईश्वर अपने ज्ञान के भण्डार में से जीव के कल्याण के लिए कुछ कृपा कर देता है तो मनुष्य उच्चकोटि का ज्ञानी हो जाता है। ज्ञान से वैराग्य उत्पन्न होता है। जिसके सहारे वह असम्प्रज्ञात समाधि तक पहुँच जाता है। प्राचीन और नवीन देहधारी गुरुओं में और परम गुरु ईश्वर में अन्तर न केवल ज्ञान का ही है अपितु यह भी अन्तर है कि देहधारी गुरु एक निश्चित समय तक ही संसार में रहते हैं और शरीर का त्याग करते हैं। परन्तु ईश्वर आदि से अन्त तक अपने शरणागत भक्तों का मार्ग प्रदर्शन करता आ रहा है।

तस्य वाचक : प्रणव: ॥ 27॥

तस्य उसका, वाचक बोधक प्रणव ओउम्।

अर्थात् उस ईश्वर का बोधक शब्द ओउम है। यह ईश्वर का मुख्य नाम है। जिस अर्थ का बोधक जो शब्द होता है, वही शब्द उस अर्थ का वाचक कहलाता है। प्रणव शब्द का अर्थ करते हुए भोज ने यह लिखा है नम्रता से स्तुति की जाय जिसके द्वारा अथवा भक्त जिसकी उत्तमता से स्तुति करते हैं वह प्रणव कहलाता है, वह ओउ्म है। इस ओउ्म का और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ईश्वर का वाच्य वाचक सम्बन्ध है। प्रणव वाचक और ईश्वर वाच्य है। यह सम्बन्ध अनादि और नित्य है। प्रणव न केवल ईश्वर का नाम ही है बल्कि स्वरूप भी है। सृष्टि के आदि में जो प्रथम ध्वनि उत्पन्न हुई वह प्रणव था। इसी प्रणव को जब अर्थ में प्रकट करते हैं तो ॐ कार हो जाता है। अभ्यास के द्वारा मानसिक जप से भी परे केवल ध्वनि की अवस्था में अन्तः करण में ही प्रणव ध्वनि सुनाई दे सकती है। ॐ कार वर्णनात्मक प्रणव अ+उ+म् से सम्बन्ध रखता है। इस प्रणव के ध्यान से योगी असम्प्रज्ञात समाधि तक पहुँच सकता है। योग मार्ग पर चलने वालों के लिए उचित है कि ओउम नाम से ही उपासना करें क्योंकि ईश्वर अनादि और नित्य है। बाकी सब नाम गौड़ और संकीर्ण हैं।

तज्जपस्तदर्थ भावनम् ॥ 28॥

तत्+जप+तदर्थ+ भावनम्।

उस (ओंकार) + जप + उसका अर्थभूत ईश्वर+चिन्तन।

अर्थात्– उस नाम का जप और उसी के अर्थ का बार–बार चिन्तन और ध्यान ईश्वर प्रणिधान है। इस सूत्र में महर्षि ने यह स्पष्ट कर दिया कि किस ईश्वर की शरणागति में हम जायँ। सूत्र सं0 23 मे महर्षि ने असम्प्रज्ञात समाधि का एक उपाय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ईश्वर प्रणिधान अथवा शरणागति बतलाया है। तो प्रश्न उठा कि जिस ईश्वर की शरणागति की जाय उस ईश्वर का नाम स्वरूप क्या है। उसका उत्तर सूत्र सं0 24 में स्वरूप का निरूपण इस प्रकार किया कि ईश्वर वह पुरुष विशेष है, जो क्लेश कर्म विपाक और संस्कारों से पृथक हो और सूत्र सं0 25 में यह बतलाया कि वह सीमारहित सर्वज्ञानी है। इस सूत्र में ईश्वर के स्वरूप को बतलाकर आगे के सूत्रों में यह कहा कि वही ईश्वर गुरुओं का गुरु और आज भी गुरु है। जो सर्वज्ञ होने से सभी विधानों का जानने वाला है और शिष्य का जो दूसरा प्रश्न है उसका नाम क्या है उसके उत्तर में सूत्र नं0 27 में ऋषि ने बतलाया है। उसका नाम ओंकार है और सूत्र नं0 28 में स्पष्ट रूप से आदेश दिया कि इसी ओंकार नाम वाले ईश्वर का जप करना चाहिए तथा उसी के अर्थ पर विचार करना चाहिए। इसी से असम्प्रज्ञात समाधि और शरणागति पूरी हो जाती है।

7. योग के विघ्न

ततः प्रत्यक्चेतनाधि

गमोऽप्यन्तरायाभावश्च।।29।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

ततः+ प्रत्यक्+ चेतना+ अधिगमः+ अपि+ अन्तराय+ अभाव+ च।

उस ईश्वर प्रणिधानात् से चेतना अर्थात जीवात्मा का+ प्राप्ति (साक्षात्कार) +भी विघ्नों का+ अभाव+ और।

अर्थात्- उस ईश्वर प्रणिधान से आत्मा का साक्षात्कार होता है और विघ्नों का अभाव अर्थात् नाश होता है। ऊपर के सूत्रों में ऋषि ये वर्णन करते आये हैं कि ईश्वर प्रणिधान (भक्ति विशेष) से भी असम्प्रज्ञात समाधि शीघ्र लगती है। उस ईश्वर की भक्ति करने का उपाय ऋषि ने ओंकार जप बतलाया है। अब इस सूत्र में अधि और च शब्द से यह कहना चाहते हैं कि भक्ति विशेष से न केवल समाधि ही शीघ्र लगती है बल्कि कई एक और विशेष लाभ भी प्राप्त होते हैं और इस सूत्र में बतलाया है कि आत्मा का साक्षात्कार होना और विघ्नों का नाश भी होता है। इस सूत्र से यह भी पता चलता है कि साधारण आदमी के लिए असम्प्रज्ञात समाधि तक पहुँचना अत्यन्त कठिन है। समाधि होने के पूर्व नाना प्रकार के विघ्न और बाधायें उत्पन्न होते हैं। ऋषि के कहने का तात्पर्य यह है कि ओंकार का जप अथवा ईश्वर प्रणिधान उन विघ्नों का भी नाश करने का सामर्थ्य रखता है। इस हेतु साधक केवल एक ओंकार का जप करके ही आत्मा का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

साक्षात्कार करके असम्प्रज्ञात समाधि में प्रवेश कर जायेगा। अब प्रश्न है कि वे कौन से विघ्न हैं जो कि योग के मार्ग में उत्पन्न होते हैं। अब इसी का उत्तर सूत्र सं0 30 में ऋषि दे रहे हैं।

व्याधिस्त्यानसंशय प्रमादालस्याविरति भ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिक त्वानवस्थितत्वानि चित्त विक्षेपास्तेन्तरायाः॥30॥

व्याधि+ सत्यान+ संशय+ प्रमाद+ आलस्य+ अविरति+ भ्रान्तिदर्शन

आलब्ध+ भूमिकत्व + अनवस्थितत्व + चित्तविक्षेपाः + अन्तरायाः।

अर्थ- व्याधि-शरीर में धातु और रस में जब विषमता उत्पन्न होती है तब कफ, पित्त, वायु दोष भी उत्पन्न हो जाते हैं। जिसके परिणाम स्वरूप मन्दाग्नि, श्वास में कष्ट, वात रोग इत्यादि नाना प्रकार के उपद्रव शरीर में उपस्थित हो जाते है।

सत्यान- चित्त की अकर्मण्यता अर्थात् मन का किसी कार्य में नहीं लगना। इस हेतु योग-साधन करने में असमर्थ होना।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

संशय- योग करने में यह सोचना कि मैं साधना कर सकूँगा कि नहीं, और यदि साधना किया भी तो पता नहीं योग सिद्धि इत्यादि मिलेगी या नहीं। इसी तरह दुविधा में पड़े रहना।

प्रमाद- समाधि के साधनों का अनुष्ठान न करना।

आलस्य- मन और शरीर भारी होने के कारण साधना नहीं करना। शरीर का भारीपन, कफ, दोष, चर्बी इत्यादि से होता है। मन में आलस्य तमोगुणी को होता है।

अविरति - विषयों में तृष्णा रहना, इन्द्रियाँ अपनी योग की वस्तुओं में लगी हों और वैराग्य का अभाव होना।

भ्रान्ति दर्शन - (उलटा ज्ञान) योग और योग की सिद्धियों को झूठ समझना।

आलब्ध भूमिकत्व - ध्यान लगने पर साधक अपनी चंचलता के कारण समाधि की भूमि को नहीं प्राप्त करना।

अनवस्थित्व- अर्थात् समाधि भूमि में प्रवेश करके भी चित्त का अपने ध्येय पर स्थित नहीं रहना।

इस प्रकार ऋषि ने सूत्र सं0 30 में नौ प्रकार के मुख्य विघ्नों का उल्लेख किया है। जिनके कारण साधकों को समाधि लाभ करने में कठिनाई उपस्थित होती है। ऊपर बतला आये हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कि ईश्वर प्रणिधान से सभी प्रकार के विघ्न समाप्त हो जाते हैं। इस आधार पर यह जाना गया कि ऊपर लिखित नौ प्रकार के विघ्न भक्ति विशेष से समाप्त किये जाते हैं। जो नौ प्रकार के विघ्न योगदर्शन में मुख्य कहे गये हैं इनके होने पर चार प्रकार के और उपविघ्न उपस्थित हो जाते हैं। इस प्रकार 9+4=13 प्रकार के मुख्य और उपविघ्न मिलकर हुए। जो चार प्रकार के उपविघ्न हैं। सूत्र सं0 31 में लिखते हैं।

दुःख दौर्मनस्याङ्गमेजयत्व श्वास प्रश्वासा विक्षेप सहभुवः॥31॥

दुःख+दौर्मनस्य+अंगमेजयत्व+श्वासप्रश्वास+विक्षेपसः+भुवः।

दुख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास प्रश्वास

ये चार प्रकार के उपविघ्न उपरोक्त 9 प्रकार के मुख्य विघ्न के साथ उपस्थित हो जाते हैं।

दुःख- पीड़ा, दुख तीन प्रकार के होते हैं।

आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक।

आध्यात्मिक दुख- उसको कहते हैं जो मनुष्य के मन और शरीर में उत्पन्न होता है। जैसे काम, क्रोध, लोभ, मोह,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मानसिक दुख हुए। बुखार इत्यादि शारीरिक दुख हुए। ये दोनों प्रकार के शारीरिक और मानसिक दुख मिलकर आध्यात्मिक दुख कहलाते हैं।

आधिभौतिक दुख - उसे कहते हैं जो भौतिक प्राणियों से उत्पन्न होता है। जैसे सिंह, सर्प आदि।

आधिदैविक दुख - उसे कहते हैं जो दैवी शक्तियों से उत्पन्न होता है। जैसे बिजली, अग्नि, वायु, तूफान आदि।

दौर्मनस्यः- क्षोभ-मनुष्य नाना प्रकार की इच्छाएँ करता है। परन्तु उसकी प्रत्येक इच्छा पूर्ण नहीं होती। तो वह दुखी होता है। और उसके मन में एक प्रकार का क्षोभ होता है, उसी को दौर्मनस्य कहते हैं।

अंगमेजयत्व - इसका अर्थ है अंगों का काँपना, योग साधन में अंगों का काँपना भी एक बहुत बड़ा विघ्न है और अंगों के काँपने से आसन स्थिर नहीं रह सकता और न योग की क्रिया ही स्थिर हो सकती है।

श्वास-प्रश्वास-बिना इच्छा के बाहर की वायु नासिका छिद्र के द्वारा अन्दर आना, बिना इच्छा के भीतर की वायु बाहर आना। ऊपर लिखे हुए नौ प्रकार के मुख्य विघ्न और चार प्रकार के उपविघ्न उन्हीं मनुष्यों को हुआ करते हैं जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

समाहित चित्त के नहीं होते अर्थात् चंचल मन वाले होते हैं। इस समाधि के मार्ग के भयंकर विघ्नों को जैसे ऊपर बताया जा चुका है, अभ्यास और वैराग्य के द्वारा मन की एकाग्रता प्राप्त करके नष्ट किया जा सकता है। इसी हेतु ऋषि आगे लिखते हैं।

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्वाभ्यासः ॥32॥

तत्+ प्रतिषेधार्थम्+ एकतत्व+ अभ्यासः।

अर्थात् उन तेरह प्रकार के विघ्न और उपविघ्न दूर करने के लिए तत्त्व का अभ्यास करना चाहिए।

भावार्थ - इस सूत्र में ऋषि पूर्वोक्त विघ्नों का नाश करने के लिए एक सरल उपाय बतला रहे हैं। वह उपाय है-एक तत्त्व का अभ्यास अभिमत इष्ट प्रिय, वस्तु के अपने चित्त को बार-बार लगाने से उस वस्तु में मन ठहरने लगता है। इससे एकाग्रता आने लगती है। इसी को एक तत्त्व का अभ्यास कहा जाता है। इस एक तत्त्व के अलावे ईश्वर प्रणिधान से भी यह विघ्न नाश हो जाते हैं। एक तत्त्व का अभ्यास करने से चित्त के मल दूर हो जाते हैं और चित्त प्रसन्न हो जाता है। साथ-ही-साथ मल के दूर हो जाने से चित्त में निर्मलता भी आ जाती है। अब प्रश्न यह है कि मन की निर्मलता और

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रसन्नता कैसे प्राप्त हो जो कि एक तत्त्व के अभ्यास के लिए उपयोगी सिद्ध हो। इसी प्रश्न का उत्तर अगले सूत्र सं0 33 में दे रहे हैं।

चित्त की एकाग्रता के साधन।

मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणा सुख दुख पुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्त प्रदानम् ॥33॥

मैत्री+ करुणा+मुदिता+ उपेक्षाणाम्+ सुख+ दुख+ पुण्य+ अपुण्य+ विषयाणाम्+ भावनात्+ चित्तप्रसादनम्।

मित्रता+करुणा+ हर्ष+ उदासीनता+ सुखी+ दुखी+ पुण्यात्मा+ पापात्मा+ विषयो में भावना के अनुष्ठान से + चित्त की प्रसन्नता और निर्मलता।

भावार्थ- इस सूत्र में चित्त को प्रसन्न करने के लिए उपाय बतलाए गये हैं। वह इस प्रकार है। सुखी, दुखी, पुण्यात्मा और पापियों के विषय में यथाक्रम मित्रता, दया, हर्ष और उपेक्षा की भावना से चित्त निर्मल और प्रसन्न रहता है।

मैत्री, करुणा, मुदिता (हर्ष) उपेक्षा (उदासीनता) सुखी, दुखी, पुण्यात्मा पापी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

चित्त को मलिन करने के लिए राजस और तामस 6 प्रकार के कालुष्य (मलिनता) होते हैं।

राग, ईर्ष्या, पर अपकार, असूया, द्वेष, अमर्ष।

राग- स्नेह पूर्वक जो सुख एक बार भोगा गया है उसको बारबार भोगने की इच्छा रखना राग है। इस भोगने में विघ्न उपस्थित होने से चित्त विक्षिप्त होकर मलिन हो जाता है।

ईर्ष्या- दूसरों के गुण आदि देखकर जो चित्त में एक प्रकार की जलन और डाह होती है वही ईर्ष्या है।

पर अपकार- दूसरे की बुराई करना चाहे उसमें अपना कोई मतलब भी न हो।

असूया- दूसरे के गुणों को छिपाकर के उसमें अवगुण बतलाना जैसे किसी वैरागी मनुष्य को रागी बताना, चरित्रवान को दुश्चरित्र बताना, असूया है।

द्वेष- क्षमा करने की शक्ति न रहने पर जब मनुष्य में एक प्रकार का कोप उत्पन्न होता है, उसको द्वेष कहते हैं।

अमर्ष- किसी के कठोर वचन सुनकर अथवा किसी के द्वारा अपमानित होकर के मन में जो बदला लेने की भावना उत्पन्न होती है उसी को अमर्ष, कालुष्य अर्थात मलिनता कहते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

उपरोक्त 6 प्रकार की मलिनताओं के कारण चित्त में कालिमा उत्पन्न होती है, जिसे ऊपर लिखे चार प्रकार के उपायों से मिटाने की चेष्टा करनी चाहिए। राग और ईर्ष्या का मैत्री से दमन करना चाहिए पर अपकार को करुणा से जीतना चाहिए। असूया को मुदिता (हर्ष) से तथा द्वेष और अमर्ष को उपेक्षा से दमन करना चाहिए। ऊपर बतलाये गये मैत्री इत्यादि उपायों से जब चित्त प्रसन्न होता है तब चित्त को किस प्रकार स्थिर किया जाए उसका वर्णन अगले सूत्र 34 में दिया है।

प्रच्छर्दन विधारणाभ्यां वा प्राणस्य ।।34।।

प्रच्छर्दन+ विधारणाभ्याम्+ वा+ प्राणस्य।

नासिका द्वारा श्वास को बाहर फेंकना + फेंके हुए श्वास को बाहर ही रोक देना + अथवा उदर में ठहरे हुए प्राणवायु को।

अर्थात्- उदर में रहने वाले प्राणवायु को बाहर फेंकने और बाहर रोकने से मन की स्थिरता होती है। इस सूत्र में प्राणायाम के तीन अंग रेचक पूरक और कुम्भक में भी वाह्य कुम्भक बताया है। भाव यह है कि प्राणायाम के द्वारा चित्त की स्थिरता प्राप्त होती है। रेचक कहते हैं प्राणवायु को नासिका छिद्र से बाहर फेंक देना, पूरक कहते हैं नासिका छिद्र से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्राणवायु को अन्दर भर लेना, कुम्भक कहते हैं वायु को रोककर रखना।

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी॥35॥

विषयवती+ वा+ प्रवृत्ति+ उत्पन्न+ मनसः+ स्थिति+ निबन्धनी।

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द विषयों वाली अथवा प्रवृत्ति (स्वभाव) +उत्पन्न हुई +मन की +स्थिति को बाँधने वाली होती है।

अर्थात्- इस सूत्र में चित्त को स्थिर करने का दूसरा उपाय बताया गया है। इसके पूर्ववाले सूत्र में यह बताया गया था कि रेचक और कुम्भक प्राणायाम से चित्त की स्थिरता की जा सकती है। इस सूत्र में उससे भिन्न अब दूसरा उपाय यह बतलाते है कि पाँच प्रकार के रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द, विषय होते हैं उनमें से धारणा ध्यान और समाधि के द्वारा किसी एक को साक्षात् करने से मन की स्थिरता प्राप्त हो जाती है।

व्याख्या - नासिका के अगले भाग में संयम करने से अर्थात् ध्यान लगाने से दिव्य गन्ध का साक्षात्कार होता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

इसको योग की भाषा में गन्ध समविध कहते हैं। इसकी सिद्धि को योगी अति सूक्ष्म गन्धों की जो वायु में उपस्थित होते हुए भी साधारण आदमी को ज्ञान नहीं होता वह योगियों को साक्षात हो जाता है। इससे मन की स्थिरता होती है। जिह्वा के अगले भाग में संयम करने से दिव्य रस का साक्षात् होता है जिसे रस समविथ कहते हैं। तालु के स्थान में संयम करने से दिव्य रूप का साक्षात्कार होता है जिसको रूप समविथ कहते है। जीभ के मध्य भाग में संयम करने से दिव्य स्पर्श का साक्षात्कार होता है और जिह्वा के मूल में संयम करने से दिव्य शब्द का साक्षात्कार होता है। यही पाँचों प्रकार के विषयों का साक्षात्कार करना मन की स्थिरता प्राप्त करने में सहायता करता है। अब अगले सूत्र में चित्त को स्थिर करने का चौथा उपाय बताया जायेगा।

विशोका वा ज्योतिष्मती ॥36॥

विशोका+ वा ज्योतिषमती।

शोकरहित+ अथवा+ प्रकाशवाली।

इस सूत्र में ऊपर के सूत्र का इतना भाग "प्रवृत्ति उत्पन्न हुई मन की स्थिति को बाँधने वाली होती है" जोड़कर अर्थ लगाना चाहिए। इस प्रकार इस सूत्र का अर्थ हुआ कि शोक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

रहित प्रकाश वाली प्रवृत्ति मन को स्थिरता दिलाती है। इस सूत्र में दूसरे प्रकार की सिद्धियों का वर्णन है जिसे प्राप्त करने से योगी का मन शान्त हो जाता है। पहले सूत्र में नाक के अगले भाग में तथा जिह्वा इत्यादि में संयम करके विषयों की प्रवृत्ति उत्पन्न करना बताया है। इस सूत्र में शोक रहित प्रसन्न चित्त होने से मन की स्थिरता होती है, यह बताया है शोक रहित होनें के लिए सुषुम्ना नाड़ी में और हृदय कमल इत्यादि चक्रों में संयम का अभ्यास करने से प्राप्त होती है। अब मन को स्थिर करने का चौथा उपाय बतलाते हैं।

वीतराग विषयं वा चित्तम् ॥37॥

वीतराग विषयं+ वा+ चित्तम्।

रागरहित योगियों के चित्त विषयक संयम करने वाला+ अथवा+ चित्त को स्थिर करने वाला होता है।

भावार्थ- चित्त को स्थिर करने का चौथा उपाय महर्षि इस प्रकार बतला रहे हैं कि जिन महान योगियों ने विषयों की अभिलाषा एक दम छोड़ दी है और वे वीतराग हो गये हैं ऐसे सिद्ध योगियों के चित्त का ध्यान करने से साधक के चित्त में वैसे ही संस्कार उत्पन्न होते हैं और मन की स्थिरता होती है। दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि साधक के मन से यदि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

विषयों का प्रेम मिट जाय तो पर वैराग्य की प्राप्ति होगी और उससे मन स्थिर हो जायेगा। अब चित्त के एकाग्र करने का पाँचवाँ उपाय इस प्रकार बतला रहे है।

स्वप्न निद्रा ज्ञानालम्बनं वा ॥38॥

स्वप्न+ निद्रा+ ज्ञान+आलम्बन+वा।

स्वप्न + निद्रा + ज्ञान + आलम्बन + स्वप्न ज्ञान और निद्रा को आलम्बन करने वाला अथवा (मन की स्थिति बाँधने वाला होता है।)

भावार्थ- स्वप्न ज्ञान और निद्रा ज्ञान का आश्रय करने वाला चित्त, मन की स्थिति को बाँधता है। स्वप्न ज्ञान का अर्थ होता है जैसा ज्ञान की स्वप्न अवस्था में हो। मतलब यह है कि जागृति अवस्था में चित्त में रजोगुण प्रधान होता है। इसलिए मन चंचल होकर नाना प्रकार के विषयों में लगा होता है। परन्तु स्वप्न अवस्था में रजोगुण के साथ तमोगुण भी होता है जिसके द्वारा मनुष्य कुछ सोया हुआ और जागे हुए दशा में रहकर स्वप्न देखता है। इसी प्रकार की मन की दशा जो कुछ जागे हुए और सोये हुए से मिलता जुलता ही अभ्यास करने से मन की स्थिरता होती है। निद्रा की दशा में तमोगुण सबसे अधिक हो जाता है। और जागृति अवस्था के ज्ञान से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

मनुष्य सर्वथा पृथक हो जाता है। इस प्रकार के अभ्यास से कि मन जैसे निद्रा में सब विषयों से अलग हो जाता है उसी प्रकार साधक अपने मन को सतोगुणी बना के विषयों से अलग कर दे तो चित्त की स्थिरता होती है। कुछ भाष्यकारों ने इसका अर्थ इस प्रकार किया कि जागृति अवस्था में सब कुछ भूले से रहने का अभ्यास कर ले तो मन की स्थिरता होती है। अब चित्त को स्थिर करने का छठाँ उपाय बताते हैं।

यथाभिमत् ध्यानाद्वा।। 39।।

यथा+अभिमत्+ध्यानात्+वा।

जिसको जो अभिमत हो उसके ध्यान करने से भी मन की स्थिति बँध जाती है।

भावार्थ- जिसको जो अभिमत अथवा इष्ट हो उसके ध्यान करने से भी मन की स्थिरता हो जाती है। मनुष्य भिन्न-भिन्न रुचियों के रखने वाले हुआ करते हैं। इसलिए जिसको जो शास्त्र के मर्यादा के अनुसार सात्विक ध्यान वस्तु हो उस पर ध्यान लगाने से चित्त की स्थिरता होती है। इस प्रकार चित्त को एकाग्र करने के 6 उपाय बताने के पश्चात् महर्षि अगले सूत्र में उनका फल क्या होगा, बतला रहे हैं क्योंकि कोई साधक कोई साधना, किसी फल की प्राप्ति को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

लक्ष्य करके ही करता है। अतः 6 प्रकार के उपायों से चित्त की एकाग्रता करने का क्या लाभ होगा, इस प्रश्न का उत्तर ऋषि अगले सूत्र में दे रहे हैं।

परमाणु परममहत्वान्तोऽस्य वशीकारः ।।40।।

परमाणु+ परम+ महत्व+ अन्तः+ अस्य+ वशीकारः।

परमाणु प्रकृति का सबसे छोटा अंश+ सबसे बड़ी वस्तु+ तक+ स्थिर चित्त वालों के वश में हो जाता है।

भावार्थ- ऊपर बताये गये उपायों से चित्त की स्थिरता प्राप्त करने पर परमाणु से लेकर सबसे बड़ी वस्तु आकाश तक योगी के वश मे हो जाता है। छोटी-से-छोटी चीज और बड़ी-से-बड़ी चीज में योगी जब चाहे अपने मन को स्थिर कर सकता है।

समाधि और उसके भेद

क्षीण वृत्तेरमिजातस्येन मणेर्ग्रहीतृग्रहण ग्राह्येषु तत्स्थतञ्जनता समापत्तिः ।।41।।

क्षीणवृत्तेः+अमिजातस्यमणे+इव+ग्रहीत+ ग्रहण + ग्राह्येषु + तत्स्थ + तद्जनता + समापत्ति।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

क्षीणवृत्ते : क्षीण हो गई वृत्तियाँ जिसकी (ऐसे निर्मल चित्त की दशा)

अभिजातस्यमणे - उत्तम जाति का शीशा या मणि, ग्रहीत स्मिता ग्रहण इन्द्रिय, ग्राह्येषु जिसको ग्रहण किया जैसे स्थूल और सूक्ष्म पदार्थ, तत्स्थ-स्थिर होकर समापत्ति-समाधि।

भावार्थ- पूर्व सूत्रों में बतलाये गये छः प्रकार के उपायों को अपना कर योगी, चित्त की एकाग्रता प्राप्त कर लेता है तो परमाणु से लेकर आकाश तक जिस वस्तु में चाहे ध्यान लगा सकता है। अब उसका चित्त उतना निर्मल हो गया है कि समाधि की प्रथम भूमि में प्रवेश करने लगा है और इस अवस्था में चित्त की निर्मलता कितनी होती है उसी का वर्णन पतन्जलि ऋषि इस सूत्र में कर रहे हैं कि किस प्रकार उत्तम जाति का विल्लौरी शीशा आरपार, बिना किसी रुकावट के वस्तु को प्रत्यक्ष कराता है। उसी प्रकार निर्मल चित्त चाहे स्मिता में लगा दो चाहे इन्द्रिय में लगा दो चाहे, संसार के स्थूल-सूक्ष्म विषयों में लगा दो सबके तदाकार होकर प्रत्यक्ष करा देता है। इसको इस सूत्र में समापत्ति कहा गया है। और उसी को सम्प्रज्ञात समाधि भी कहते हैं। अब समाधि कितने प्रकार की होती है अगले सूत्र में वर्णन करते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

तत्र शब्दार्थ ज्ञान विकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः॥ 42॥

तत्र- उन सम्पत्तियों में से शब्द, अर्थज्ञान, विकल्पैः- शब्द अर्थ और ज्ञान के भेदों से, संकीर्ण-मिली हुई, सवितर्क समापत्ति कही जाती है।

भावार्थ- महर्षि सूत्र 42 में आगे चार प्रकार की समाधियों का वर्णन करेंगे जिसमें से प्रथम सवितर्क समाधि को बतलाकर इस सूत्र में उसी की परिभाषा दे रहे हैं। भाव यह है कि समाधि की वह दशा जिसमें शब्द, अर्थ और ज्ञान तीनों एक साथ मिले हुए से प्रतीत होते हैं तो ऐसी समाधि को सवितर्क समाधि कहते हैं। उदाहरण के लिए (गो शब्द जो कानों के द्वारा ग्रहण किया जाए। (गो अर्थ) जैसे गो से यह अर्थ लेते हैं कि चार पैर, दो सींग, लम्बी पूँछ इत्यादि वाला पशु (गो ज्ञान) गो वह पशु विशेष जो अन्य पशुओं से भिन्न है। वास्तव में शब्द अर्थ और ज्ञान तीनों भिन्न-भिन्न पदार्थ होते हैं। परन्तु निरन्तर अभ्यास से एक से एक मिले हुए प्रतीत होते हैं। जिस समाधि में किसी वस्तु का शब्द, अर्थ और ज्ञान मिला हुआ रहता है उसी को सवितर्क कहते हैं। सवितर्क समाधि को ही सविकल्प समाधि भी कहते हैं। स्थूल भूत

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant-

अथवा भौतिक पदार्थ समाहित चित्त वाले योगी की समाधि शब्द, अर्थ और ज्ञान से मिली हुई प्रतीत होती है उसी को सवितर्क समाधि कहते हैं। इससे भिन्न निर्वितर्क समाधि होती है जिसमें शब्द और ज्ञान तो छूट जाता है। परन्तु केवल अर्थ मात्र ही समाधि का विषय बना रहता है। इस निर्वितर्क समाधि का वर्णन अगले सूत्र सं० 43 में इस प्रकार बतला रहे हैं।

स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ॥43॥

स्मृति परिशुद्धौ+ स्वरूपशून्याइव+ अर्थमात्र निर्भासा+ निर्वितर्का।

स्मृति के शुद्ध हो जाने पर स्वरूप से शून्य जैसा अर्थमात्र से प्रतीत होने वाली निर्वितर्क समापत्ति (समाधि) कहलाती है।

भावार्थ– मन की चंचलता दूर होकर समाधि की प्रथम भूमि में प्रवेश कर जब और अधिक चित्त की शुद्धता होती है तो शब्द संकेत छूट जाता है और केवल अर्थ मात्र को ही चित्त प्रकाशित करता है। उस समय अपने स्वरूप से शून्य जैसा प्रतीत होता है। इसी दशा का नाम निर्वितर्क समाधि है। सवितर्क और निर्वितर्क में भेद समझाने के लिए हम इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding JKS MoE-Grant

प्रकार कह सकते हैं कि सवितर्क समाधि में चित्त में किसी वस्तु का शब्द, अर्थ और ज्ञान तीनों एक साथ प्रकाश में आते हैं। और चित्त तीनों में तदाकार हुआ रहता है। परन्तु शनैः शनैः अभ्यास के बल से एकाग्रता इतनी बढ़ जाती है कि बाह्य वृत्ति अन्तर्मुख होती जाती है। तब एकाग्रता इस सीमा तक पहुँच जाती है कि शब्द और ज्ञान की स्मृति भी नहीं रहती और चित्त शून्य की दशा में होकर के उस बाह्य वस्तु में, जिस में वह लगाया गया है, उसके केवल अर्थ मात्र को साक्षात् करता है। तो वह निर्वितर्क समापत्ति कही जाती है। निर्वितर्क समाधि को ही निर्विकल्प समाधि भी कहते है। इस प्रकार स्थूल वस्तुओं में योगीजन संयम करके दो प्रकार समाधियाँ प्राप्त करते हैं। जिसे सवितर्क, निर्वितर्क समाधि के नाम से हम ऊपर कह आये हैं। अब जब योगी स्थूल पदार्थों से आगे बढ़कर सूक्ष्म पदार्थों को लेकर समाधि लगाता है तो सूक्ष्म पदार्थ के सम्बन्ध से दो प्रकार की समाधियाँ हो जाती हैं। जिसे सविचार और निर्विचार नाम से अगले सूत्र सं0 44 मे ऋषि बतला रहे हैं।

एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्म विषया व्याख्याता ।।44।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

एत्याएव+सविचार+निर्विचारा+ व्याख्याता।

इस सवितर्क और निर्वितर्क समापत्ति के निरूपण से ही सविचार और निर्विचार समापत्ति भी सूक्ष्म विषय में व्याख्यान की हुई समझनी चाहिए।

भावार्थ- ऊपर के दो सूत्रों में जिस प्रकार सवितर्क और निर्वितर्क समाधि का निरूपण किया गया है। ठीक उसी प्रकार से सूक्ष्म विषय के सम्बन्ध में सविचार और निर्विचार समापत्ति को समझ लेना चाहिए। भाव यह है कि जब योगी कोई सूक्ष्म विषय लेकर चलता है तब वह सविचार, निर्विचार समाधि को प्राप्त होता है। परन्तु जब तक वह स्थूल विषय को लेकर चलता है, तब तक वह सवितर्क और निर्वितर्क समाधि तक ही रहता है। इसका विवरण और व्याख्या और भी सूक्ष्म रूप से भाष्यकारों ने कर दिया है। जिस प्रकार अलग से स्वाध्यायी और मननशील व्यक्ति कर सकते हैं। अब प्रश्न होता है कि सविचार और निर्विचार समाधि में जो सूक्ष्म विषय ध्यान के लिए आते हैं वे कौन से हैं; इसका उत्तर ऋषि सूत्र सं0 45 में दे रहे हैं।

सूक्ष्मविषयत्वं चालिङ्गपर्यवसानम् ।।45।।

सूक्ष्म विषयत्वं च+ अलिङ्ग+ पर्यवसानम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

वस्तुओं की सूक्ष्म विषयता, लिंग (चिन्ह) रहित, प्राकृतिक।

भावार्थ– सूक्ष्म विषय, परमाणुओं से भी सूक्ष्म मूल प्रकृति तक को कहते हैं। परमाणु तक तो हम विषयों का साक्षात्कार स्थूल रूप से कर सकते हैं। परमाणु से भी सूक्ष्म जो मूल प्रकृति है वह केवल योगियों को निर्विचार समाधि में ही हो सकती है। यहाँ तक योगी सूक्ष्म विषयों तक ध्यान लगाते हैं। परन्तु उपरोक्त चारों प्रकार की समाधियाँ किसी आश्रय पर ही अवलम्बित हैं। इसलिए उनको सबीज समाधि कहते हैं। इसके सम्बन्ध में अगले सूत्र सं0 46 मे बताया गया है।

ता एव सबीज समाधिः ॥46॥

ता एव = वे सब चारों प्रकार की समाधियाँ सबीज समाधिः सबीज समाधियाँ कहलाती हैं।

भावार्थ– बीज का अर्थ, आलम्बन या आश्रय है। भाव यह है कि उपरोक्त चारों प्रकार की समाधियों में स्थूल अथवा सूक्ष्म विषयों का आश्रय लेकर ही समाधि लगायी जाती है। ऊपर हम पढ़ चुके हैं कि सवितर्क और निर्वितर्क समाधि मे स्थूल वस्तु का आश्रय लेते हैं। सविचार और निर्विचार समाधि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

में सूक्ष्म विषय का आश्रय लेते हैं। इस प्रकार किसी न किसी आश्रय पर ही समाधियाँ ठहरी हैं। जैसे बीज के आश्रय से ही कोई वृक्ष होता है। इन चारों में निर्विचार समाधि सबसे बढ़ कर होती है। इस निर्विचार समाधि से भी जब योगी आगे बढ़ जाता है। तब उस की क्या दशा होती है। इसका उत्तर सूत्र सं0 47 में दे रहे हैं।

निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्म प्रसादः।।47।।

निर्विचार+ वैशारद्य+ अध्यात्म+प्रसादः।

निर्विचार समाधि की भी निर्मलता होने से अध्यात्म की निर्मलता तथा प्रसन्नता होती है।

भावार्थ- निर्विचार समाधि की शुद्धि का अर्थ इस प्रकार समझना चाहिए कि रजोगुण और तमोगुण का एकदम अभाव होकर केवल प्रकाश स्वरूप सात्विक एकाग्र प्रवाह में बहती रहती है। इसी को निर्विचार की शुद्धि कहते हैं। इस अवस्था में योगी प्रकृति के सब पदार्थों को तत्काल ही प्रत्यक्ष कर लेता है और उससे जो आनन्द मिलता है उसी का नाम अध्यात्म प्रसाद है। जो यह अध्यात्म प्रसाद प्राप्त होता है उसका नाम ऋषि अगले सूत्र सं0 48 में बतला रहे हैं।

ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा ।।48।।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

ऋतम्भरा-सच्चाई को धारण करने वाली अर्थात अविद्या से रहित तत्र = पूर्वोक्त अध्यात्म प्रसाद की प्राप्ति के बाद ऊँची समाधि लगाने वाली एक बुद्धि मिलती है जिसका नाम ऋतम्भरा प्रज्ञा है। यह ऋतम्भरा प्रज्ञा सभी प्रकार के ज्ञानों से श्रेष्ठ होता है। इसी के सम्बन्ध में ऋषि अगले सूत्र 49 में बतला रहे हैं।

श्रुतानुभान प्रज्ञाभ्यामन्य विषया विशेषार्थत्वात्॥49॥

श्रुत+अनुभान+ प्रज्ञाभ्याम+ अन्य+ विषया+ अर्थत्वात।

आगम और अनुमान प्रज्ञा से इस ऋतम्भरा प्रज्ञा का विषय अलग है। विशेष रूप से अर्थ का साक्षात् करने से।

भावार्थ- आगम और अनुमान के द्वारा जो प्रज्ञा बुद्धि प्राप्त होती है उसमें भिन्न प्रकार की प्रज्ञा ऋतम्भरा द्वारा प्राप्त होती है। क्योंकि ऋतम्भरा प्रज्ञा में विशेष रूप से अर्थ का ज्ञान होता है जो कि आगम और अनुमान से नहीं होता। साध ारण रूप से प्रत्येक वस्तु के दो स्वरूप होते हैं। 1. सामान्य 2. विशेष।

1. सामान्य - वह रूप है जो उस प्रकार की वस्तु में सामान्यता से पाया जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

2. विशेष – वह रूप है जो एक वस्तु को दूसरी वस्तु से, विशेष लक्षण के कारण, पृथक करके बतलावे। इस सूत्र में ऋषि के कहने का अभिप्राय है कि यदि कोई यह शंका करे कि प्रमाण आगम और अनुमान द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है तो क्या इस ज्ञान और ऋतम्भरा ज्ञान में कोई अन्तर भी है तो सूत्र सं0 49 में ऋषि कहते हैं कि दोनों के ज्ञान में महान अन्तर है। क्योंकि आगम और अनुमान के द्वारा वस्तुओं का केवल सामान्य तथा स्थूल रूप ही प्रकट होता है। परन्तु समाधि में उत्पन्न होने वाली ऋतम्भरा के द्वारा वस्तुओं का सूक्ष्म और विशेष रूप उत्पन्न होता है। आगम और अनुमान से नहीं होता। तो प्रश्न है कि इस ऋतम्भरा प्रज्ञा से क्या लाभ है, इस का उत्तर ऋषि सूत्र सं0 50 में दे रहे हैं।

तज्जः संस्कारीऽन्य संस्कारप्रतिबन्धी ॥50॥

ततः+ संस्कार+ अन्यसंस्कार+ प्रतिबन्धी।

उस ऋतम्भरा प्रज्ञा से उत्पन्न होने वाला संस्कार दूसरे सभी प्रकार के संस्कारों का प्रतिबन्धक अर्थात् रोकने वाला होता है।

भावार्थ – ऋतम्भरा प्रज्ञा का फल यह है कि जब ऋतम्भरा ज्ञान प्राप्त हो जाता है तो इसके संस्कार से चित्त के

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment. Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

ऊपर जो पिछले संस्कार पड़े हैं और जो आगे पड़ रहे हैं, वे सब रुक जाते हैं। अर्थात् ऋतम्भरा प्रज्ञा के अभ्यास से जो चित्त पर संस्कार पड़ता है वह पिछले सभी संस्कारों को रोक देता है और जब सभी संस्कार रुक जाते हैं तो चित्त एकदम स्थिर हो जाता है। उसमें किसी प्रकार की चंचलता नहीं रहती है। और वह अब बिना किसी आश्रय के (निर्वीज) समाधि में प्रवेश कर सकता है। कितना भी सात्विक ज्ञान क्यों न प्राप्त हुआ हो परन्तु उस ज्ञान के द्वारा निर्वीज समाधि नहीं प्राप्त हो सकती है। केवल यह ऋतम्भरा ज्ञान ही है जो साधक को निर्वीज समाधि तक पहुँचा सकता है। इसी का वर्णन सूत्र सं० 51 में ऋषि दे रहे हैं।

तस्यापि निरोधे सर्व निरोधांन्निर्वीज समाधिः॥ 51॥

तस्य+अपि+सर्व+निरोधात्+निर्वीजः+समाधिः।

उस ऋतम्भरा प्रज्ञा से उत्पन्न होने वाले संस्कार के भी निरोध हो जाने पर सब संस्कारों के निरोध हो जाने से निर्वीज समाधि होती है।

भावार्थ- ऊपर बताया जा चुका है कि ऋतम्भरा ज्ञान के होने से चित्त की चंचलता की अवस्था के संस्कार नष्ट हो जाते हैं। परन्तु ऋतम्भरा प्रज्ञा का अपना संस्कार तो चित्त पर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

पड़ता ही रहता है। इस सूत्र में ऋषि कह रहे हैं कि ऋतम्भरा प्रज्ञा के द्वारा जो संस्कार बना रहता है, निर्वीज इसका नाम इसलिए पड़ा कि इसमें सूक्ष्म और स्थूल किसी प्रकार का आश्रय नहीं रहता। एक मात्र तत्लीनता रहती है। यही निर्वीज समाधि अन्तिम समाधि है।

समाधि पाद समाप्त

***

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

साधन पाद

प्रथम समाधि पाद में संस्कारी तथा योग्य अधिकारियों का वर्णन है। परन्तु मध्यश्रेणी का अधिकारी जिनके अन्दर पूर्वजन्म के योग के संस्कार थोड़े अथवा नहीं हैं और जिनमें राग, द्वेष, क्लेश आदि भी मौजूद हैं, उनके लिए इस साधन पाद में उपाय बताये गये हैं। जिनके द्वारा वे योगविद्या में प्रवेश करके उच्च अवस्था तक जा सकें। अतः साधारण मनुष्यों के लिए साधन पाद बहुत आवश्यक है तथा लाभ प्रद है। उन्हीं उपायों में से सबसे पहले इस पाद के प्रथम सूत्र में क्रिया योग नामक उपाय को बतला रहे हैं।

10. क्रिया योग।

तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि क्रियायोगः

॥ 1॥

तप स्वाध्याय+ ईश्वरप्रणिधान+ क्रियायोगः।

अर्थ- तपस्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान को क्रियायोग कहते हैं।

भावार्थ- क्रियायोग के अन्दर तीन चीजें होती हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

तप- प्राण, मन और इन्द्रिय को उचित तौर से अपने वश में करना कहलाता है। जिस मनुष्य के इन्द्रिय और मन तप के द्वारा बस में नही लाये जायेंगे वे कभी भी योग के अधिकारी नहीं हो सकते। भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी, मान-अपमान इन्हीं द्वन्द्वों के सहन करने की शक्ति को तप कहते हैं। परन्तु तामसी तप जिसकी निन्दा गीता में भगवान कृष्ण ने की है वह योगियों के लिए त्याज्य है। जैसे किसी इन्द्रिय को सुखा देना इत्यादि। तप के द्वारा चित्त की मलिनता नहीं आनी चाहिए। बल्कि प्रसन्नता होनी चाहिए। परन्तु तामसी तप के साधक बड़े ही क्रोधी और उग्र स्वभाव के हो जाते हैं। इसलिए तामसी तप, योग मार्ग में वर्जित है।

स्वाध्याय - वेद, उपनिषद, गीता, दर्शन-शास्त्र तथा अन्य धार्मिक सदग्रन्थों का अध्ययन जिसके द्वारा अध्यात्म की उन्नति हो सके तथा ओंकार नाम का जप और ओउम सहित गायत्री मंत्र का जप स्वाध्याय कहलाता है। स्वाध्याय का साधारण अर्थ अच्छे ग्रन्थों का अध्ययन करना। सभी शिक्षित लोग जानते ही हैं, परन्तु योग मार्ग में स्वाध्याय का विशेष अर्थ स्व+ अध्याय अर्थात् अपने को जानने की चेष्टा करना स्वाध्याय कहलाता है। इसके अतिरिक्त ओंकार का जप तथा गायत्री मंत्र का जप भी योगियों ने स्वाध्याय का अंग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust, Funding IKS-MoE-Grant

माना है।

ईश्वर प्रणिधान- अर्थात (भक्ति विशेष) शरीर में अन्तः करण को और अपने शुभकार्य और उसके फलों को ईश्वर को समर्पण कर देना ईश्वर प्रणिधान कहलाता है। ईश्वर प्रणिधान के सम्बन्ध में समाधि पाद के सूत्र 23 में ईश्वर प्रणिधान के स्वरूप को कहते हैं। समाधिपाद के सूत्र 23 से लेकर सूत्र 28 तक ईश्वर के स्वरूप को बतलाते हुए महर्षि पतंजलि ने ओउम नाम के जप और उसके अर्थ की भावना करने को ईश्वर प्रणिधान बताया है। जिस प्रकार अग्नि में डाला हुआ लोहा अथवा अन्य धातु स्वच्छ हो जाता है उसी प्रकार तप रूप अग्नि में तपा हुआ शरीर और मन शुद्ध हो जाता है। मनु महाराज ने स्वाध्याय के सम्बन्ध में गायत्री मंत्र का उल्लेख करते हुए लिखा है कि तीन मात्रा वाले ओंकारपूर्वक तीन महाव्याहृति और तीन पदवाली सावित्री को ब्रह्म का मुख मानना चाहिए। मतलब यह कि गायत्री मन्त्र मनुष्य को ब्रह्म अर्थात् परमात्मा तक पहुँचा सकता है। इस लिए गायत्री मन्त्र के अर्थ को ठीक-ठीक जान लेना उचित है।

गायत्री मन्त्र - ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्।

अर्थ- गायत्री के प्रथम तीन मात्रा वाला ओंकार लगा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant-

हुआ है। ॐ (ओउम) की तीन मात्रायें अ+उ+म् यह परमात्मा की तीन शक्तियों को बतलाती हैं।

अ कार- एक मात्रा वाला विराट जो स्थूल जगत के सम्बन्ध में परमात्मा का नाम है, इसकी सिद्धि से सांसारिक जितनी बाधायें हैं वे सब हट जाती है। और विराट रूप के साथ स्थूल जगत का उपभोग करने वाला साधक बन जाता है।

'उ' कार- यह उकार दो मात्रा वाला हिरण्यगर्भ जो सूक्ष्म जगत के सम्बन्ध में परमात्मा का नाम है। इसकी सिद्धि से स्थूल और सूक्ष्म जगत तथा अंहकार आदि जो साधक के मार्ग में विघ्न उपस्थित करते हैं वे सब हट जाते हैं। अंहकार की सिद्धि से सूक्ष्म जगत के ऐश्वर्य प्राप्त हो जाते हैं।

'म' कार- यह तीन मात्रा वाला कारण जगत के सम्बन्ध में ईश्वर का नाम है। इसकी सिद्धि से सभी प्रकार की विघ्न-बाधायें साधक के मार्ग से हट जाती हैं। और कारण जगत के ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।

विराम- यह परमात्मा का शुद्ध चेतन स्वरूप है जो अन्तिम अवस्था में प्राप्त होता है। इसके बाद मोक्ष मिल जाता है।

तीन महाव्याहृतियाँ- भूः भुवः स्वः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

भूः- सारे संसार का प्राणस्वरूप परमात्मा और पृथ्वी लोक नियन्ता।

भुवः - सारे संसार का अपान रूप ईश्वर। प्राणियों को तीनों प्रकार के दुःखों से छुड़ाने वाला। अन्तरिक्ष लोक का नियन्ता।

स्वः- सारे संसार का व्यान रूप परमात्मा सब प्राणियों को सुख तथा ज्ञान देने वाला और द्यौलोक का नियन्ता।

गायत्री के तीन पाद होते हैं।

अर्थ- सवितुः सब जगत को उत्पन्न करने वाला, माता-पिता।

देवस्य- ज्ञान रूप प्रकाश देने वाले देव।

तत्-उस, वरेण्यम- अपनाने योग्य, भर्गः शुद्ध स्वरूप का।

धीमहि ध्यान करते हैं। यः = जो, नः हमारी।

धियः बुद्धि, प्रचोदयात् - ठीक मार्ग में लगा दे।

अर्थ- सब प्राणियों के माता-पिता ज्ञान रूप प्रकाश देने वाले देव के उस उपासना करने योग्य शुद्ध स्वरूप का हम ध्यान करते हैं जो हमारी बुद्धि को ठीक मार्ग में लगा दे।

इस प्रकार हमने देखा कि क्रियायोग में जो तप, स्वाध्याय

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

और भक्ति है वे तीनों साधक के लिए आरम्भ से ही अति आवश्यक है। उन तीनों के बिना साधना आरम्भ नहीं की जा सकती। तप, स्वाध्याय और भक्ति के विषय में संक्षेप में ऊपर की व्याख्या में हम जान चुके हैं। अब प्रश्न होता है कि तप, स्वाध्याय और भक्ति अथवा क्रिया योग से क्या लाभ है। वह महर्षि पतंजलि अगले सूत्र में स्वयं ही बतला रहे हैं।

(11) क्लेश निवृत्ति के साधन।

समाधिभावनार्थः
क्लेशतनुकरणार्थश्चश्रवः॥2॥

समाधि+भावनार्थ+क्लेश+तनु+करण+ अर्थ+च।

समाधि की भावना के लिए+ दुख+ दुर्बल अर्थात मिटाने के लिए।

भावार्थ– क्रियायोग से दो लाभ हैं। समाधि की भावना मनुष्य में हो जाती है। जितने क्लेश हैं सब साधना के मार्ग से हट जाते हैं।

बिना क्लेशों को हल्का अथवा कमजोर किए हुए मनुष्य अभ्यास और वैराग्य की प्रगति नहीं कर सकता। समाधि की भावना का अर्थ होता है समाधि के सम्बन्ध में बार–बार चित्त

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

में विचार होते रहना। अब प्रश्न होता है कि क्रियायोग के द्वारा जो क्लेश अर्थात् दुःख क्षीण किये जाते हैं वे कौन-कौन से हैं। महर्षि अगले सूत्र सं0 3 में उन क्लेशों का उल्लेख कर रहे हैं।

अविद्यास्मितारागद्वेषभिनिवेशाः क्लेशाः।।3।।

अविद्या+स्मिता+राग+ द्वेष+अभिनिवेश+क्लेशः।

अर्थात- क्रिया योग के द्वारा जिन क्लेशों अथवा दुःखों को क्षीण किया जाता है, वे संख्या में 5 प्रकार के होते हैं।

अविद्या, स्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश। यही पाँच प्रकार के क्लेश हैं जिन्हें क्रिया योग के द्वारा क्षीण किया जाता है, जिसके क्षीण हो जाने से ज्ञान तथा वैराग्य की प्राप्ति होती है। इन पाँचों में से अविद्या जो पहला क्लेश है, के सम्बन्ध में अगले सूत्र सं0 4 में बताया जा रहा है।

अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषाः प्रसुप्त तनु विच्छिन्नोदाराणाम्।।4।।

अविद्या+ क्षेत्रम्+ उत्तरेषाम्+ प्रसुप्त+ तनु+ विच्छिन्न+ उदाराणाम्।

अविद्या ही वह भूमि है बाद वाले चारों क्लेशों की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-
प्रसुप्त, तनु, विच्छिन्न, उदार ये चार अवस्थायें होती हैं।

जिस प्रकार भूमि में रहकर बीज उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार अविद्या रूपी भूमि में स्मिता, रागद्वेष और अभिनिवेश रूपी वृक्ष उत्पन्न होते हैं। यदि अविद्या मिट जाय तो उससे उत्पन्न होने वाले स्मिता आदि चारों दुःख अपने आप मिट जायेंगे। इन दुःखों की चार अवस्थायें होती हैं।

प्रसुप्त - सोया हुआ अर्थात् वह क्लेश जो अभी जागे नहीं हैं परन्तु समय आने पर तथा विषयों की प्राप्ति होने पर जागने वाले होते हैं। जैसे बाल अवस्था में विषय-भोग की भावना प्रसुप्त अवस्था में रहती है और युवावस्था में जागृत होती है।

तनु- वह क्लेश है जो प्रति पक्ष भावना के द्वारा अथवा क्रियायोग के द्वारा कमजोर कर दिया गया है और दुर्बल होने के कारण अपने कार्य को आरम्भ नहीं कर पाता। परन्तु वासनायें सूक्ष्म रूप से चित्त में रहती हैं। अविद्या को ज्ञान से दुर्बल करते हैं। स्मिता को भेद-दर्शन के अभ्यास से। अर्थात् आत्मा और चित्त में भेद समझना इसी को स्मिता कहते हैं। राग-द्वेष को मध्यस्थ अथवा उपेक्षा वृत्ति से तनु करते हैं और अभिनिवेश को ममता के त्याग से तनु करते हैं और इन पाँचों क्लेशों को राज योग के धारणा ध्यान और समाधि से तनु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

करते हैं।

विच्छिन्न - क्लेशों की वह अवस्था है जिसमें एक क्लेश दूसरे क्लेश के द्वारा दबाया गया है। और दबे हुए हालत में प्रकट न हो परन्तु अनुकूल परिस्थितियो में प्रकट हो जाये जैसे राग के अन्दर द्वेष छिपा रहता है और द्वेष के अन्दर राग छिपा रहता है।

उदार- क्लेशों की वह अवस्था है जब क्लेश अनुकूल परिस्थिति पाकर प्रकट हो जाता है। जैसे किसी वैरागी को यदि अपने छोड़े हुए पुत्र को देखने से राग अथवा ममता उत्पन्न हो जाय तो उसे उदार अवस्था कहा जायेगा।

अविद्या चारों क्लेशों की जननी है। तो प्रश्न यह है कि अविद्या किसको कहते हैं। इसका उत्तर ऋषि सूत्र सं0 5 में दे रहे हैं।

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचि सुखात्म ख्यातिरविद्या।।5।।

अनित्य+अशुचि+दुख+अनात्मसु, नित्य+ शुचि+ सुख+ आत्मख्याति+ अविद्या।

अर्थ- अनित्य-नित्य, अशुचि-शुचि, दुःख-सुख,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

अनात्मसु–आत्मख्याति, इस प्रकार का ज्ञान अविद्या कहलाती है।

भावार्थ– अनित्य को नित्य समझना अपवित्र को पवित्र समझना, दुःख के कारणों को सुख का कारण समझना, अनात्म (निर्जीव) को आत्म (सजीव) समझना यही अविद्या है।

संक्षेप में उलटा ज्ञान को अविद्या कहते हैं। वस्तुओं के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान न ही होना, बल्कि उसके स्थान पर उलटा ज्ञान होना, यही अविद्या है। उदाहरण के लिए यह अनित्य अर्थात् उत्पत्ति और विनाश वाला जगत है उसको नित्य अथवा अविनाशी समझना अविद्या है। अपवित्र में पवित्र समझना। जैसे विषयी मनुष्यों को शरीर के अपवित्र स्थानों से सम्बन्ध रखने में प्रसन्नता का अनुभव होता है। वास्तव में मल–मूत्र–कफ इत्यादि के स्थान अपवित्र हैं। परन्तु उसको पवित्र समझकर मनुष्य अज्ञानी बना हुआ है। दुःख के हेतुओं को सुख का हेतु समझना अर्थात् संसार की सारी वस्तुएँ परिवर्तनशील और दुखमय है; परन्तु मनुष्य प्रत्येक वस्तु में ममता जोड़कर जब मृत्यु का समय आता है तब वस्तुओं को छोड़ना पड़ता है तो दुःख का अनुभव करता है। जड़ में चेतन समझना यह भी अविद्या है। जैसे पत्थर, नदी, सूर्य जो निर्जीव पदार्थ हैं उनको सजीव समझकर उनकी याचना। अविद्या के बाद स्मिता क्लेश है। प्रश्न है कि स्मिता क्लेश किसको कहते

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

हैं। उत्तर सूत्र सं0 6 में दे रहे हैं।

दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥6॥

दृग+दर्शन+शक्तयो+एकात्मा+इव+ स्मिता।

अर्थ– दृग शक्ति और दर्शन शक्ति एक जैसे भान होना स्मिता क्लेश है। भाव यह है कि चित्त और आत्मा दो भिन्न पदार्थ हैं। परन्तु मनुष्य अविद्या के कारण मन और आत्मा को एक समझ लेता है और कहता है कि मैं दुखी हूँ, मैं रोगी हूँ इत्यादि। वास्तव में आत्मा न तो दुखी है, न रोगी है। दुखी और रोगी इत्यादि होना शरीर का धर्म है आत्मा का नहीं, परन्तु अविद्या के कारण मनुष्य ऐसे कहा करता है। इसी को स्मिता क्लेश कहते हैं। जैसे अविद्या से स्मिता उत्पन्न होती है, उसी प्रकार स्मिता क्लेश से राग क्लेश उत्पन्न होता है, राग से द्वेष उत्पन्न होता है और द्वेष से अभिनिवेश उत्पन्न होता है। स्मिता से रोग किस प्रकार उत्पन्न होता है। इसका उत्तर सूत्र सं0 7 में मिलता है।

सुखानुशयी रागः॥7॥

सुख+ अनुशयी+ रागः।

अर्थ– सुख भोगने के पीछे, चित्त में जो भोग की इच्छा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

बनी रहती है, उसी को राग कहते हैं। स्मिता क्लेश के कारण, मन, इन्द्रिय और शरीर में ममता उत्पन्न हो जाती है और ममता उत्पन्न हो जाने से उस वस्तु में मनुष्य आनन्द अनुभव करने लगता है। इसी को राग कहते हैं। संसार की जितनी भोग्य वस्तुएँ हैं उसमें एक बार भोग करने से उसको बार-बार भोग करने की इच्छा होती रहती है। इसी को राग कहते हैं। जैसे किसी ने सिनेमाहाल में कोई दिलचस्प फिल्म देखा हो, उससे उसके विषय की तृप्ति हुई हो तो वह उस प्रकार की विषयी फिल्मों को बार-बार देखना चाहता है अर्थात् उसे कहा जायेगा कि सिनेमा से उसे राग हो गया है। जो संस्कार एक बार मन में पड़ जाते हैं उससे फिर तृष्णा और लोभ उत्पन्न होता है, इसी को राग कहते हैं। यही राग द्वेष का कारण है। क्योंकि जिन वस्तुओं में मनुष्य बार-बार सुख भोगना चाहता है, यदि उस भोग के मार्ग में कोई विघ्न या विरोध आ जाय तो द्वेष आरम्भ हो जाता है। द्वेष की परिभाषा ऋषि सूत्र सं0 8 मे दे रहे हैं।

दुःखानुशयी द्वेषः।।8।।

दुख+अनुशयी+द्वेषः

अर्थ- दुःख भोगने के अनुभव के पीछे जो घृणा की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

वासना चित्त में उत्पन्न होती है, उसी को द्वेष कहते हैं। जैसे यदि किसी बाग का रखवाला मित्रता में आकर मालिक से छिपकर अपने मित्र को जब तक फल खिलाता है तब तक उस मित्र को बाग के रखवाले से पूरा प्रेम अथवा राग रहता है। परन्तु मालिक के जान जाने पर उस बाग का रखवाला चोरी से फल खिलाना बन्द कर देता है तो उस खाने वाले व्यक्ति के हृदय में उस रखवाला से द्वेष उत्पन्न हो जाता है। इसीलिए कहा भी जाता है कि जहाँ राग है वहाँ द्वेष अवश्य है। जब तक इच्छानुकूल वस्तु से प्रीति रहेगी, राग बना रहेगा। ज्योंही इच्छा के विरुद्ध विषय के भोग में विघ्न उत्पन्न होते हैं त्यों ही द्वेष उत्पन्न हो जाता है। द्वेष से ही अभिनिवेश क्लेश उत्पन्न होता है।

स्वरस वाही विदुषोऽपि तथा रूढ़ोऽभिनिवेशः।।9।।

स्वरसवाही-स्वभाव से होने वाला विदुषोऽपि पढ़े लिखे लोगों को भी तथा आरूढ़ उसी प्रकार वश में किये जाते हैं। (जैसे मूर्खों के) अभिनिवेश, उसी को अभिनिवेश क्लेश कहते हैं।

भावार्थ- अभिनिवेश क्लेश उस क्लेश को कहते हैं जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

केवल मूर्खों को ही नहीं शिक्षित व्यक्तियों को भी दुख में डाले रहता है। जैसे मृत्यु का भय। अशिक्षित तो मृत्यु से ड़रते ही हैं। परन्तु शिक्षित लोग भी किसी प्रकार से मृत्यु से कम भयभीत नहीं रहते हैं। वास्तव में आत्मा अजर और अमर है। जैसा कि गीता अध्याय 2 में श्लोक 19 से 22 तक में बतलाया गया है। परन्तु इस अमर आत्मा को भी मृत्यु की फाँस में फँस कर मृत्यु से भयभीत होना अभिनिवेश है। अभिनिवेश को त्यागना उसी के लिए सम्भव हो सकता है, जो आत्मा के स्वरूप को ठीक-ठीक समझ गया है और पर वैराग्य द्वारा ममता का त्याग कर चुका है। अब प्रश्न है कि क्या वे पाँचों क्लेश किसी साधना के द्वारा मिटाये भी जा सकते हैं अथवा मनुष्य उनको मिटाने में असमर्थ है। इस साधन पाद में यह बतलाया गया है कि पाँचों क्लेश मिटाये जा सकते हैं जैसा कि अगले सूत्र सं0 10 में ऋषि लिखते हैं।

ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः ॥10॥

ते+प्रति+प्रसवहेया+ सूक्ष्म।

वे (पाँचों दुख) अपने कारण में निवृत्ति करने योग्य जबकि क्रियायोग के द्वारा वे दुःख हल्के कर दिये गये हैं।

भावार्थ- यह है कि तप, स्वाध्याय और भक्ति जिसको

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

क्रियायोग कहते हैं, के अभ्यास से जब पाँचों प्रकार के क्लेश सूक्ष्म कर दिये गये हों तो वे उत्पत्ति स्थान को लौट जाते हैं। अर्थात् अपने कारण में लीन हो जाते हैं। मतलब यह कि असम्प्रज्ञात समाधि में चित्त जब एकदम एकाग्र हो जाता है उस समय ये पाँचों प्रकार के दुःख भी जहाँ से उत्पन्न हुए थे वहीं लौट जाते हैं अर्थात् नष्ट हो जाते हैं। प्रति प्रसव - अपने कारणों में लीन हो जाना। हेया - त्यागने योग्य।

ध्यान हेयास्तद् वृत्तयः ॥ 11॥

ध्यान+हेया+तद्वृत्तयः।

भावार्थ- ध्यान से त्यागने योग्य वह वृत्तियाँ (पाँचों क्लेश) इस सूत्र में शिष्य गुरु से प्रश्न करता है कि ऊपर बतलाये गये सूत्र सं0 9 में पाँचों प्रकार के दुखों को अपने कारण में लौटा देने की बात कही गयी है। क्या उसके अलावे और भी कोई साधन है जिसके द्वारा ये पाँचों क्लेश मिटाये जा सकें ?

इसी प्रश्न के उत्तर में ऋषि इस सूत्र में यह कह रहे हैं कि इनको मिटाने का उत्तम उपाय ध्यानहेया अर्थात् ध्यान है। जब साधना के द्वारा ध्यान पूर्ण हो जाये और समाधि लगने लगे तो ये पाँचों क्लेश मिट जायेंगे। जैसे किसी कपड़े को

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

साधारणतया साफ करने में कठिनाई नहीं होती, परन्तु उसी वस्त्र को एकदम स्वच्छ और निर्मल करने में कठिनाई होती है उसी प्रकार पंच क्लेश को स्थूल रूप से मिटा देने में कठिनाई नहीं होती। परन्तु इन क्लेशों की सूक्ष्म वृत्तियाँ, जो चित्त पर गहरा प्रभाव डाले रहती है; को नष्ट करने में काफी समय और साधना की आवश्यकता पड़ती है। क्रिया योग के द्वारा क्लेशों को सूक्ष्म कर दिया जाता है तथा उनकी शक्ति नया संस्कार और वासना को उत्पन्न करने को कम हो जाती है। परन्तु उनको निर्मूल करने के लिए ध्यान योग की आवश्यकता पड़ती है और ध्यान योग के द्वारा असम्प्रज्ञात समाधि में जब चित्त अपने कारण में लीन हो जाता है तो ये पाँचों प्रकार के दुख भी नष्ट हो जाते हैं। जब तक पाँचों प्रकार के दुःख समूल नष्ट नहीं होते तब तक इन दुःखों के कारण ही मनुष्य को नाना प्रकार के शरीर धारण करने पड़ते हैं। बार-बार जन्म लेने का कारण क्या है, इसका उत्तर ऋषि सूत्र सं0 12 में दे रहे हैं।

क्लेशमूलःकर्माशयोदृष्टादृष्ट जन्म वेदनीयः।।12।।

क्लेशमूलः+ कर्माशयः+ दृष्ट+ अदृष्ट+ जन्म+ वेदनीयः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

क्लेश जिसकी जड़ में है (अर्थात पाँचों प्रकार के क्लेश रहते हुए) कर्य की वासना+ देखा हुआ (उपस्थित) जीवन + अगला जीवन (आगे होने वाला जन्म) जन्म + भोगने योग्य।

भावार्थ- पाँचों प्रकार के क्लेश जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है, यदि समूल नष्ट नहीं कर दिये गये तो उन क्लेशों से संयुक्त जो कर्म होंगे, उनकी वासनायें इस जन्म और अगले जन्म में अर्थात् बार-बार नाना प्रकार के भोगों को देते रहेंगे। कर्माशय शब्द से कर्म की वासना के स्वरूप बतलाते हैं।

क्लेश मूल वासना के कारण बतलाते हैं। दृष्ट और अदृष्ट जन्म से उन वासनाओं का फल बतलाते हैं। इनके मिटाने का उपाय निष्काम कर्मयोग है। जब तक मनुष्य सकाम कर्म करता रहेगा तब तक उसकी वासनायें नहीं मिट सकती हैं। इसलिए निष्काम कर्म के द्वारा कर्म वासना को समाप्त करना चाहिए। कर्मों के संस्कार के द्वारा मनुष्य फिर तीन प्रकार के कार्य करने के लिए प्रेरित होता है। पुण्य, पाप, मिश्रित कर्म अर्थात पाप पुण्य का मिला हुआ रूप।

पुण्य कर्म के द्वारा मनुष्य देवता की उपाधि प्राप्त करता है। पाप कर्म के द्वारा मनुष्य, मनुष्य योनि से नीचे की योनियों में पशु-पक्षी इत्यादि बनता है। और पाप-पुण्य मिले हुए कर्मों

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

के द्वारा उसी प्रकार के फिर फल भोगता है। परन्तु इन तीनों प्रकार के कर्मों के करने से केवल कर्मेन्द्रियाँ तथा ज्ञानेन्द्रियाँ हेतु नहीं हैं बल्कि मन ही मुख्य हेतु है। मन में जब तक कोई भावना उत्पन्न नहीं होती तब तक कोई इन्द्रिय कार्य में प्रवृत्ति नहीं होती। इस प्रकार मनोवृत्ति ही सभी कर्मों की वासनाओं को उत्पन्न करती है। हमारी वासनायें इस जन्म में जैसी होंगी वैसी ही हमें अगले जन्म में जाति, आयु और भोग इन तीनों चीजों की प्राप्ति होगी। इस सम्बन्ध में ऋषि अगले सूत्र सं0 13 में स्पष्टीकरण कर रहे हैं।

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः॥13॥

सतिमूले - जड़ में (पाँचों क्लेशों के) होते हुए+तद्विपाक उसका फल जाति+आयु+ भोग, इन तीनों की प्राप्ति होती है।

भावार्थ- जब तक पाँचों क्लेशों को नष्ट नहीं कर दिया जायेगा, तब तक इनकी उपस्थिति में अगले जन्म में उन्हीं के अनुसार जाति, आयु और भोग मिलेगा।

जाति- जाति से अभिप्राय मनुष्य, देव, पशु, कीटाणु इत्यादि से है।

आयु- एक निश्चित काल तक जीव का किसी शरीर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

से सम्बन्ध रखना आयु कहलाता है।

भोग- इन्द्रियों के द्वारा संसार की वस्तुओं का भोग करना भोग कहलाता है। इस आयु, जाति और भोग के सिद्धान्त के लिए एक वृक्ष का दृष्टान्त ले लें। वृक्ष में मुख्य रूप से चार चीजें होती हैं। जड़, तना, फल, फलों के स्वाद।

जड़- पाँचों क्लेश, तना- कर्माशय, फल-जाति आयु और भोग। फलों का स्वाद- सुख-दुख।

अथवा भेद से कर्म तीन प्रकार के होते हैं।

संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण।

संचित- उसे कहते हैं जो केवल चित्त में पड़े हुए हैं परन्तु उनका भोग अभी आरम्भ नहीं हुआ है।

प्रारब्ध- उसको कहते हैं जिसके द्वारा इस जन्म में भोग आरम्भ हो गया है।

क्रियमाण- उसे कहते हैं जिससे नवीन इच्छाओं से नये कर्म और नये संस्कार बनते हैं। इस प्रकार संचित प्रारब्ध और क्रियमाण इन तीनों प्रकार के कर्म मनुष्य जीवन के साथ हैं। इस कर्म के सिद्धान्त का समझना कठिन नहीं। इसलिए गीता में कर्म को ठीक-ठीक जानने का उपदेश किया गया है। कीट-पतंग, चौपाये, पक्षी आदि से मनुष्य योनि ऊँची है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

कर्मानुसार मनुष्य योनि से अगले जन्मों में पशु, पक्षी और कीट की योनियों में लौटने का क्रम हो सकता है। यहा बड़ा ही वैज्ञानिक सिद्धान्त है। यद्यपि आजकल का विकासवाद, जिसके डार्विन इत्यादि समर्थक थे, कीटाणु के पशु-पक्षी होते हुए मनुष्य तक पहुँच जाना विकासवाद के अनुसार तो ठीक बताते हैं परन्तु मनुष्य से नीचे की योनियों में जाना उनकी समझ में नहीं आता। यदि आलोचनापूर्वक इस पर विचार किया जाये तो यही पता लगता है कि ईश्वर का यह बहुत बड़ा न्याय है कि जिसके द्वारा वही जीवों को उनके पापाचरण से मुक्त करने के लिए मनुष्य योनि के नीचे की योनियों में जन्म देकर सुधार कर देता है। क्योंकि मनुष्य योनि ही केवल कर्मयोनि है, बाकी सब योनियाँ केवल भोग योनियाँ हैं। नीचे की योनियों में भी जीव केवल भोगों को भोगता है और उसके दुष्कर्म करने का अभ्यास छूट जाता है। जाति, आयु और भोग में भी पूर्व जन्म के किये हुए पाप-पुण्य के अनुसार ही दुःख-सुख की प्राप्ति होती है। इस सम्बन्ध में सूत्र सं0 14 देखें।

ते ह्लाद परिताप फलाः पुण्यापुण्य हेतुत्वात्॥14॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ते+ह्लात+परिताप+ फला+ पुण्य+ अपुण्य+ हेतुत्वात्।

वे (जाति, आयु और भोग) सुख-दुख फल वाले+ पुण्य+पाप कारण होने से।

भावार्थ- पिछले सूत्र में बतलाये हुए कर्म के, वासनाओं से उत्पन्न होने वाले, जाति, आयु और भोग। इस सूत्र के द्वारा दो प्रकार के कर्म बतलाये गये हैं।

(1) सुख देने वाला (2) दुःख देने वाला।

1. सुख देने वाला- वह कर्म वासना है जो अहिंसात्मक वृत्ति से काम किया जाय। दूसरों को सुख पहुँचाने से सुख मिलता है। पूर्वजन्म में यदि कोई व्यक्ति प्राणिमात्र को सुख पहुँचाने का कष्ट किया हो तो उसे अगले जन्म में ही सुख मिल सकता है चाहे किसी जाति अथवा कितनी आयु का तथा किसी भोग के साथ उत्पन्न हुआ हो।

2. दुःख देने वाला :- दूसरे प्रकार की वासना जिसे सूत्र में परिताप कहा गया है। वह पापाचरण से उत्पन्न होता है उसका मुख्य कार्य हिंसात्मक हुआ करता है। हिंसात्मक कार्यों से अभिप्राय केवल प्राणियों के प्राण लेने से ही नहीं बल्कि शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक किसी प्रकार से आदमी में वेदना उत्पन्न करना हिंसा है। स्वार्थवश दूसरे प्राणियों को काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि के चक्कर में फँस कर जो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

दुःख पहुँचाने की मनोवृत्ति होती है वह हिंसात्मक क्रिया प्रणाली कही जाएगी। विचित्रता यह है कि सुख का अनुभव प्राणियों में भिन्न रीति से हुआ करता है। जैसे किसी व्यक्ति को सत्संग में आनन्द मिलता है तो दूसरे को दुष्ट संग से। यदि भौंरे को फूल की सुगन्ध में आनन्द मिलता है तो विष्ठा के कीड़ों को विष्ठा की दुर्गन्ध में आनन्द मिलता है। कर्मानुसार यदि जीव नीचे की योनियों में भी जन्म लेता है तो वहाँ भी उसे कर्म के सिद्धान्त के अनुसार उसके कर्मानुसार सुख-दुःख उसके साथ-साथ लगे रहते हैं। जैसे कुत्ते की योनि एक निकृष्ट योनि मानी जाती है। यदि पाप कर्मों की वासना के द्वारा कोई कुत्ते की योनि में आ जाए तो वहाँ भी उसके पूर्वकृत पुण्य अथवा अपुण्य के आधार पर सुख-दुख प्राप्त होगा। उदाहरण के लिए हम देखते हैं कि कोई कुत्ता गलियों में ठोकरें खाता हुआ, भेजा सड़ा हुआ, खउरा इत्यादि भयंकर रोगों से पीड़ित होकर जीवन व्यतीत करता है तो दूसरा कुत्ता विदेशों से हजारों रूपये खर्च करके हवाई जहाज से उड़ाकर लाया जाता है जो सदा धनियों के साथ रहता है और मोटरों में सुख भोगता है। इसलिए कर्म का सिद्धान्त बड़ा ही गहन है। इसलिए कर्म के सिद्धान्त पर ही अगले जन्म में सुख-दुख की प्राप्ति निर्भर करती है। गीता अध्याय 4 में बतलाये गये कर्म, अकर्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

और विकर्म के सिद्धान्त को भी जान लेना उचित होगा।

गीता अध्याय 4 में 17 से 20 तक में कर्म के विभिन्न स्वरूपों का बड़ा ही सुन्दर तथा रोचक शैली में विवेचन किया गया है। संक्षेप में कर्म के सिद्धान्त का एक ही सार निकलता है वह (अहिंसयात सर्वभूतानि) किसी प्राणी को कष्ट न पहुँचाना और वास्तव में कोई मनुष्य किसी को सुखी या दुःखी नहीं कर सकता, वह तो उसे पूर्वजन्म के फल विपाक के रूप में मिलना ही है परन्तु अज्ञान वश मनुष्य सोच लेता है कि मैं इसके सुख को न्यून अथवा नष्ट कर सकता हूँ और इसी वासना के कारण इस प्रकार का हिंसात्मक विचार रखने वाला व्यक्ति भी अपने अगले जन्म में दुखों का भागी बन जाता है। संसारी व्यक्तियों के लिए सुख-दुख दोनों अलग हो जाते हैं परन्तु ज्ञानी मनुष्यों के लिए सारा संसार ही दुखमय है और इसी दुख भरे संसार से सदा के लिए आना-जाना बन्द कर देना मुक्ति कहलाती है। यह संसार दुखमय कैसे है, इसका उत्तर अगले सूत्र 15 में ऋषि दे रहें हैं -

(13) ये सब दुख ही है -

परिणाम ताप संस्कार दुःखैर्गुणवृत्ति विरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः॥15॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

परिणाम + ताप + संस्कार + दुःखैगुण + वृत्ति + विरोध ाच + दुखमेव + सर्व + विवेकिनः।

अर्थ : परिणाम ताप और संस्कार के दुखों से और गुणों की वृत्तियों के विरोध से भी दुख ही है। सब कुछ ज्ञानियों के लिए।

भावार्थ : ज्ञानी मनुष्यों के लिए राज-सुख भी दुखों से भरा हुआ ही प्रतीत होता है क्योंकि संसार की प्रत्येक वस्तु में (1) परिणाम (2) ताप (3) संस्कार लगे हुए हैं। इन तीनों के अतिरिक्त गुणों में अर्थात् सत, रज और तमोगुण में भी विरोध है। इस हेतु इस विरोध के कारण कोई व्यक्ति शान्ति का अनुभव नहीं कर पाता और संसार अशान्त तथा दुखमय प्रतीत होता है।

(1) परिणाम : उस दुख को कहते हैं जहाँ विषय भोग करने के बाद इन्द्रियों की तृप्ति नहीं होती और तृप्ति नहीं होने से राग, क्लेश, जो पहले पढ़ आये हैं, उत्पन्न हो जाता है। राग उत्पन्न होने से विषय भोग की तृष्णा बलवान हो जाती है। जब इन्द्रियाँ विषय भोग में बिल्कुल असमर्थ हो जाती हैं तो विषय सुख के भोग की तृष्णा उस विषयी आदमी में उपस्थित ही रहती है। इस हेतु यह विषय सुख परिणाम में दुख ही हुआ। इसलिए इसे परिणाम दुख कहते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS MoE, Grant-

(2) ताप दुख : विषय-सुख भोगने की बार-बार इच्छा को राग कहते हैं, जो ऊपर पढ़ आये हैं और इस विषय-सुख के भोग में जो रूकावटें पैदा होती हैं, उन्हीं के द्वारा द्वेष पैदा होता है जो ऊपर पढ़ आये हैं। विषयी मनुष्य को विषय भोग के समय भी यह भय लगा रहता है कि यह भोग का समय बड़ा ही क्षणिक है और मैं बड़ी देर तक आनन्द नहीं लूट पाऊँगा, इस हेतु वह दुखी हो जाता है। इसे ताप दुख कहते हैं।

(3) संस्कार दुख : ऊपर हम पढ़ आये हैं कि सुख के भोगने की इच्छा राग और रुकावट से द्वेष पैदा होता है। इस प्रकार इस राग द्वेष का द्वन्द इस शरीर में बार-बार चल रहा है। विषय भोग द्वारा जो दुख मिलता है वह अपने स्थान पर है। परन्तु राग द्वेष के कारण जो संस्कार हमारे चित्त पर पड़ रहे हैं उन संस्कारों के द्वारा अगले जन्म में निश्चित रूप से दुखों की प्राप्ति होगी। इसलिए इसे संस्कार दुःख कहते हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई विषयी मनुष्य किसी दुश्चरित्र नारी से सम्बन्ध जोड़ता है तो उसके द्वारा उपदंश (गोनो) सिफलिस (गर्मी सुजाक) हो जाए तो वह अपने स्थान पर है ही साथ में उस नारी से राग होने के कारण और उसके साथ भोग करने में रुकावट उपस्थित होने पर द्वेष होने के कारण, राग द्वेष के जो संस्कार पड़ गये हैं इससे अगला जन्म भी नष्ट हो गया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

परिणाम दुख, ताप दुख और संस्कार दुख के विषय में हम लोग ऊपर पढ़ आये। अब संसार दुखों से भरा हुआ है। इसको ऋषि इस प्रकार बतलाते हैं कि प्रकृति के तीनों गुणों के विरोध होने से भी ज्ञानियों के लिए सारा संसार ही दुखमय है। प्रकृति के तीन गुण सत, रज और तम तीन स्वभाव वाले होते हैं। सतोगुण प्रकाश स्वरूप होता है, रजोगुण प्रकृति अथवा क्रिया स्वरूप होता है, तमोगुण स्थिति अथवा रुकावट स्वभाव वाला होता है। सतोगुण से सुख मिलता है, रजोगुण में दुख अधिक, सुख कम मिलता है।

तमोगुण में मोह माया अज्ञानता रूपी बन्धन बना रहता है। यह तीनों गुण परिणामी होते हैं। एक गुण, बाकी दो गुणों को दबाकर रखता है। जब सतोगुण प्रधान होगा तब रजोगुण और तमोगुण दब जाते हैं। जब रजोगुण प्रधान होगा तब सतोगुण और तमोगुण दब जाते हैं। इसी प्रकार तमोगुण की प्रधानता में सत, रज दब जाते हैं। साधारण मनुष्य के ऊपर प्रत्येक क्षण में गुणों का प्रभाव पड़ता है। वही मनुष्य यदि एक क्षण सात्विक है तो दूसरे क्षण राजसी अथवा तामसी हो जाता है। इसलिए इस सूत्र में ऋषि ने बतलाया कि गुणों के आपस में विरोध होने से सारा संसार दुखमय है। तो प्रश्न होता है कि इस दुख भरे संसार में किस दुख का त्याग किया जाए, इसका उत्तर सूत्र सं0 16 में ऋषि इस प्रकार दे रहे हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust, Funding IKS-MoE-Grant-

(14) दुःख तो दूर करना चाहिए

हेयं दुःखमनागतम् ॥16॥

हेयं + दुःखं + अनागतम्

त्याज्य अथवा त्यागने योग्य + दुःख + आने वाला

भावार्थ : ऋषि के कहने का तात्पर्य यह है कि आने वाले दुःखों को त्यागने की चेष्टा करनी चाहिए क्योंकि भूतकाल में जो दुःख थे उन सब को भोग चुके, वर्तमान काल में जो दुःख हैं उन्हें हम भोग रहे हैं और प्रत्येक क्षण में भूत के गर्भ में चलते जा रहे हैं। इस हेतु भूतकाल का दुख और वर्तमान काल के दुख की चिन्ता मनुष्य करके ही क्या करेगा। वह केवल आने वाले दुख के विषय में ही सावधान हो सकता है। इसलिए इस जन्म में, पिछले जन्म के भोग भोगते हुए, अगले जन्म की चिन्ता करनी चाहिए जिससे आने वाला जीवन जो हो वह सुखमय हो। अब प्रश्न है कि इन दुःखों का कारण क्या है। इसका उत्तर ऋषि अगले सूत्र सं0 17 में दे रहे हैं।

(15) दुःख का कारण।

द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेय हेतुः ॥17॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

दृष्ट + दृश्यो + संयोगः + हेय + हेतुः।

भावार्थ : द्रष्टा कहते हैं चेतन पुरूष को अथवा जीव को जो स्वामी होकर चित्त को देखता रहता है। दृश्य कहते हैं चित्त को जो स्वामी की मिल्कियत जायदाद होकर के नाना प्रकार के संस्कारों को अपने मालिक जीव, अर्थात् पुरुष को दिखलाता है। संक्षेप में भाव यह हुआ कि द्रष्टा जो आत्मा है उसका संयोग जब चित्त के साथ बना रहता है तब ही नाना प्रकार के दुःख उत्पन्न होते हैं। ज्योंही आत्मा को यह ज्ञान हो जाए कि उसका सम्बन्ध चित्त के साथ कुछ भी नहीं है, चित्त प्राकृतिक वस्तु है, आत्मा प्रकृति से भिन्न है त्योंही दुखों का कारण नष्ट हो जाता है और जीव अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है, जिसको कैवल्य कहते हैं। अब प्रश्न होता है कि यह दृश्य क्या है। उसका स्वरूप, उसका कार्य और उसका प्रयोजन क्या है। इस प्रश्न का उत्तर ऋषि अगले सूत्र सं0 18 में दे रहे हैं।

प्रकाश क्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मक भोगापवर्गार्थ दृश्यम्।।18।।

प्रकाश + क्रिया + स्थिति + शीलं + भूत + इन्द्रिय + आत्मकं + भोग + अपवर्ग + अर्थम + दृश्यम्।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

अर्थ : प्रकाश क्रिया और स्थिति जिसका स्वभाव है, भूत और इन्द्रिय जिसका स्वरूप है, योग और अपवर्ग जिसका प्रयोजन है।

भावार्थ : ऋषि ने दृश्य के स्वभाव, स्वरूप और प्रयोजन के सम्बन्ध में यह बतलाया है कि दृश्य का स्वभाव, प्रकाश, क्रिया और स्थिति है। दृश्य का स्वरूप भूत और इन्द्रिय है। दृश्य का प्रयोजन भोग और अपवर्ग है। संक्षेप में सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण से जो कुछ भौतिक जगत बना है वह सब दृश्य है। गुणों के धर्म। सत्व गुण - सतोगुण का धर्म प्रकाश है। रजोगुण का धर्म क्रिया और प्रवृत्ति है और तमोगुण का धर्म स्थिति अथवा रोकना है। सूत्र में जो प्रकाश क्रिया स्थितिशील कहा गया है उसका मतलब, सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण स्वभाव वाला है। यह तीनों गुण परिणामी अथवा परस्पर संवेग तथा वियोग गुण, विवेक ख्याति वाले हैं। ये तीनों गुण पुरुषों के साथ माया रूप से लिपटे रहते हैं। जिनको अभी विवेक ख्याति अर्थात् पुरुष प्रकृति का ज्ञान नहीं हुआ है, जब ये तीनों गुण साम्यावस्था में रहते हैं तो उसी को मूल प्रकृति, प्रधान अव्यक्त और कारण भी कहते हैं। जब ये साम्यावस्था को छोड़कर विषमावस्था में आते हैं तो व्यक्त का कार्य अर्थात् संसार की नाना प्रकार की रचना आरम्भ हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ज़ाती है। जब यह नियम है कि एक समय में केवल एक ही गुण प्रधान होता है और बाकी सब गौण होते हैं। जब सतोगुण प्रधान होगा तब रजोगुण और तमोगुण दबे होते हैं। जब रजोगुण प्रधान होता है तब सतोगुण और तमोगुण दबे रहते हैं। जब तमोगुण प्रधान होगा तब सतोगुण और रजोगुण दब जायेंगे।

इस सूत्र में दृश्य (संसार) को भूत इन्द्रियात्मक कहा गया है। भूत से मतलब दस भूत जिसमें पाँच स्थूल और पाँच सूक्ष्म भूत हैं। स्थूल भूत में जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी और आकाश है। सूक्ष्म भूत में रस, गन्ध, रूप, स्पर्श शब्द है। ये दस भूत हो गये। इन्द्रियाँ 13 (तेरह) हैं। पाँच कर्म इन्द्रियाँ, हाथ, पैर इत्यादि। पाँच ज्ञान इन्द्रियाँ - आँख, नाक, कान इत्यादि और तीन सूक्ष्म इन्द्रियाँ, मन, अहंकार और बुद्धि इत्यादि। सब मिलकर तेरह इन्द्रियाँ हुई। अब इन गुणों का प्रयोजन क्या है। उसका उत्तर इस सूत्र में भोग और अपवर्ग नाम से कहा गया है। यह प्रकृति जीव के भोग करने के लिए तथा अपवर्ग अर्थात् मुक्ति दिलाने के लिए बनी है। भोग-जीव जब प्रकृति के गुण तथा स्वरूप का अनुभव करता है तो यह भोग कहलाता है और जीव अपने को प्रकृति के स्वरूप से अलग समझकर केवल द्रष्टा मात्र रहता है तो अपवर्ग अर्थात् मुक्ति कहलाती

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

है। इसलिए मूल प्रकृति का दूसरा कोई प्रयोजन नहीं है, सिवाय इसके कि यह जीव को मुक्ति दिला दे। इस सूत्र सं0 में 18 में दृश्य के स्वरूप, स्वभाव और प्रयोजन का वर्णन करने के पश्चात् उनकी अवस्थाओं का वर्णन, ऋषि अगले सूत्र सं0 19 में कर रहे हैं।

विशेषाविशेष लिंग मात्रा लिंगानि गुण पर्वाणि॥19॥

विशेष+अविशेष+लिंग मात्र+अलिंगानि, गुण + पर्वाणि।

अर्थ : विशेष, अविशेष लिंग मात्र और अलिंग यह गुणों की अवस्थायें हैं।

भावार्थ : तीनों गुण अर्थात् सत, रज और तम की चार अवस्थायें होती हैं। विशेष, अविशेष, लिंग और अलिंग।

(1) विशेष : 16 प्रकार के होते हैं। पाँच महाभूत, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और एक मन, इस प्रकार सब सोलह हुए।

(2) अविशेष – यह छः प्रकार के होते हैं। पाँच तन्मात्रा (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द) और एक अहंकार। कुल छः होते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection: Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

(3) लिंग – यह विशेष और अविशेष से रहित केवल लिंग मात्र, जिसको महत्तत्व भी कहते हैं। वही अभिप्राय है।

(4) अलिंग – मूल प्रकृति जो कि अभी व्यक्त नहीं हुई है और अव्यक्त अवस्था में है। दृश्य (प्रकृति) का स्वरूप बतलाकर अब महर्षि द्रष्टा अर्थात् जीव के स्वरूप को सूत्र सं0 20 में बतलाते हैं।

द्रष्टा दृशिमात्र शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ॥20॥

द्रष्टा + दृशिमात्र + शुद्ध + अपि + प्रत्यय + अनुपश्यः।

जीवात्मा + देखने की शक्तिमात्र + शुद्ध अथवा निर्मल होते हुए भी + चित्त की वृत्तियों के अनुसार देखने वाला।

भावार्थ : द्रष्टा की परिभाषा करते हुए ऋषि लिखते हैं कि द्रष्टा जो केवल देखने की शक्ति मात्र है वह शुद्ध तथा निर्मल होते हुए भी चित्त की वृत्तियों के अनुसार देखने वाला है। केवल द्रष्टा ज्ञान मात्र ही है। उसमें कोई परिणाम नहीं होता। वह स्वयं भी कुछ नहीं देखता बल्कि शक्ति मात्र है। वह जो देखने वाला प्रतीत होता है वह केवल चित्त की वृत्तियों के कारण होता है। चित्त की वृत्तियाँ परिणामी भी होती है। बिल्लौरी शीशे की भांति जिस विषय से चित्त का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

उपराग होता है उसी के अनुसार चित्त हो जाता है। परन्तु पुरुष केवल साक्षी मात्र होकर देखता रहता है। चित्त वास्तव में चेतन नहीं है। परन्तु पुरुष के ज्ञान रूपी प्रकाश से चेतन जैसा भासने लगता है। जिस-जिस वस्तु में चित्त तदाकार हो जाता है वह सब पुरुष से छिपता नहीं है। इस सूत्र में द्रष्टा अर्थात् पुरुष के स्वरूप को बतलाकर अगले सूत्र सं0 21 में ऋषि यह कहते हैं कि दृश्य अर्थात् प्रकृति का प्रलोभन केवल पुरुष के लिए ही है।

तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा ॥ 21॥

तद + अर्थ + एव + दृश्य + आत्मा

उस द्रष्टा (पुरुष) के लिए ही + दृश्य का स्वरूप है।

भावार्थ : उस पुरुष के लिए ही यह सारा दृश्य का स्वरूप है। संक्षेप में भाव यह है कि प्रकृति का अपना कोई प्रयोजन नहीं है। बल्कि परोपकारी लोगों के समान वह केवल पुरुष के भोग और अपवर्ग के लिए कार्य कर रही है। पुरुष प्राकृतिक वस्तुओं का उपभोग करता है। जब उसे विवेक ख्याति के द्वारा ज्ञान हो जाता है कि वह प्रकृति से भिन्न है तब उसे अपवर्ग (मुक्ति) हो जाती है। इसलिए प्रकृति केवल पुरुष के लिए ही कार्य कर रही है। अब प्रश्न होता है कि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant-

पुरुष की मुक्ति हो जाने पर यह दृश्य अर्थात् प्रकृति नष्ट हो जाती है। ऋषि इसका उत्तर नकारात्मक भाव से अगले सूत्र सं0 22 में दे रहे हैं।

कृतार्थं प्रतिनष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् ॥ 22॥

कृतार्थ + प्रति + नष्टं + अपि + अनष्टं + तद् + अन्य + साधारण + त्वात्।

कृतार्थ पुरुष के लिए नष्ट हुआ भी वास्तव में नष्ट नहीं होता क्योंकि वह दूसरों के साझे की वस्तु है।

भावार्थ : जिस पुरुष का प्रयोजन सिद्ध हो गया है अर्थात् अपवर्ग (मुक्ति) प्राप्त हो चुकी है उसके लिए यह दृश्य अर्थात् प्रकृति का कार्य समाप्त है, अर्थात् वह नष्ट हो चुकी है। परन्तु वह वास्तव में नष्ट नहीं हुई है क्योंकि वह साझे की वस्तु है।

भाव यह है कि ऊपर हम पढ़ आए हैं कि यह शंका की है कि इस दृश्य जगत का प्रयोजन क्या है। इसका उत्तर सूत्रकार ने यह दिया है कि यह दृश्य पुरुष अर्थात् जीव के भोग और मोक्ष के लिए है। दूसरा प्रश्न यह उठता है कि यदि व्यक्ति मुक्त हो जाए तो यह दृश्य जगत नष्ट हो जाएगा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

क्योंकि मुक्ति के बाद इस दृश्य जगत की क्या आवश्यकता रह जाएगी ?

इसी प्रश्न का उत्तर ऋषि सूत्र सं0 22 में दे रहे हैं कि यह प्रकृति नष्ट नहीं होती क्योंकि यह साझे की वस्तु है। इसका अभिप्राय यह है कि एक पुरुष मुक्त हो जाता है तो उसके लिए निःसंदेह प्रकृति की आवश्यकता नहीं रहती परन्तु अभी अगणित जीव मुक्त हो जाने को बाकी रह गये हैं। इसलिए प्रकृति का प्रयोजन उन सब अमुक्त जीवों के लिए ज्यों-का-त्यों बना हुआ है। यह दृश्य जगत किसी एक पुरुष विशेष की सम्पत्ति नहीं है बल्कि सभी पुरुषों अर्थात् जीवों की साझेदारी की चीज है। जब तक सभी जीवों का भोग और अपवर्ग समाप्त नहीं होता तब तक प्रकृति का कार्य चलता रहेगा।

अब दृश्य प्रकृति के स्वरूप को बतलाकर अगले सूत्र सं0 23 में द्रष्टा और दृश्य अर्थात् जीव और प्रकृति के संयोग को ही दुःख का कारण समझते हैं।

स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोलब्धि हेतुः संयोगः ॥23॥

स्व + स्वामी + शक्त्योः + स्वरूप + उपलब्धि + हेतुः + संयोगः।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

अर्थ : स्वरूप शक्ति और स्वामी शक्ति नायक जो स्वरूप की उपलब्धि का कारण है, वह संयोग है।

भावार्थ : चित्त और सारी जड़ वस्तु स्व (मिल्कियत) है। चेतन पुरुष, इस मिल्कियत का मालिक है। अर्थात् इस जड़ स्व का, चेतन स्वामी है। शक्ति शब्द का अर्थ स्वभाव शब्द स्वरूप से है। ज्ञेय (जानाजाय) द्रष्टा (ज्ञाता) है। इस दृश्य के भोग होने की क्रिया और द्रष्टा के भोगने की क्रिया को ही संयोग मात्र दिया गया है। यह पुरुष प्रकृति का संयोग स्व, स्वामी रूप में अनादिकाल से चला आ रहा है। इसी को हटाने के लिए स्वशक्ति और स्वामी शक्ति के स्वरूप की उपलब्धि की जाती है। इस दृश्य स्वरूप का विवेकपूर्ण साक्षात करना भोग है, और द्रष्टा के स्वरूप की उपलब्धि अर्थात् यह ज्ञान हो जाना कि पुरुष, प्रकृति से भिन्न है। यही पुरुष दर्शन, स्वरूप स्थिति, अपवर्ग (मुक्ति) इत्यादि नामों से जाना जाता है। अब प्रश्न होता है कि पुरुष को प्रकृति की माया क्यों जकड़े रहती है। उसे तत्व ज्ञान का दर्शन क्यों नहीं होता, वह अपने स्वरूप को क्यों नहीं समझ पाता, इस अदर्शन का क्या कारण है। इस प्रश्न का उत्तर ऋषि अगले सूत्र सं0 24 में दे रहे हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

तस्य हेतुरविद्या ॥24॥

तस्य + हेतु + अविद्या।

अर्थ : उस संयोग का + कारण + अविद्या।

भावार्थ : उस अदर्शन रूपी संयोग का कारण अविद्या है। भाव यह है कि ऊपर के सूत्रों में जो हम पढ़ आये हैं कि आत्मा और चित्त का संयोग ही जीव को प्रकृति से भिन्न समझने से रोकता है, और जन्म-मरण का कारण है। जिस समय पुरुष अर्थात् जीव को यह ज्ञान हो जाए कि वह प्रकृति का मालिक है, प्रकृति उसकी मिल्कियत है तथा वह चेतन है और प्रकृति जड़ है, इत्यादि भिन्नता को जानते ही पुरुष को विवेक ज्ञान हो जाता है। इस सूत्र में ऋषि इसी विषय को स्पष्ट कर रहे हैं कि पुरुष और प्रकृति की जो भिन्नता है उसका अदर्शन (अज्ञान) है। यह किस कारण से है, उसका उत्तर इसी सूत्र सं0 24 में यह दिया हुआ है कि अदर्शन का एक मात्र कारण अविद्या है। अविद्या अर्थात् मिथ्या ज्ञान ही पुरुष, प्रकृति विवेक की प्राप्ति में बाधक है, और यही अदर्शन बन्धन का कारण है। इस बन्धन की निवृत्ति कैसे होगी ? विवेक ज्ञान से होगी। विवेक ज्ञान की प्राप्ति पर वैराग्य से होगी। इस प्रकार सूत्र सं0 16 से सूत्र सं0 24 तक एक सा सम्बन्ध है। जिसकी विवेचना ऊपर कर दी गयी है। अब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

अगले सूत्र में ऋषि यह बतलाये कि चित्त और जीव में जो संयोग हो गया है, उस संयोग का कारण अविद्या है। उसी अविद्या को मिटा देने से कैवल्य की प्राप्ति होती है। अगला सूत्र सं० 25 इस प्रकार है।

(16) चिकित्सा

तद्भावात्संयोगाभावोहानं तद्दृशे कैवल्यम्॥ 25॥

तद् + अभावात् + संयोग + अभाव + हानं + तद् + दृशे + कैवल्यम्।

अर्थ : उस विद्या के + अभाव से + संयोग का + अभाव + हान + वह + पुरुष + अकेला हो।

भावार्थ : उस विद्या के अभाव से अदर्शन रूपी जो संयोग है, उसका अभाव हो जाता है और यही हान है। उसी अवस्था में जीव को कैवल्य प्राप्ति होती है। संयोग के अभाव को हान कहते हैं। इसका क्रम इस प्रकार है कि अविद्या के नाश से अदर्शन का नाश और अदर्शन के नाश से संयोग का नाश हो जाता है। और इसी संयोग के नाश को हान कहते हैं। अर्थात् दुखों का अपने कारण सहित नाश हो जाना यही हान

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

का स्वरूप है। जब दुःख अपने कारण सहित नाश हो जाते हैं तब पुरुष अर्थात जीव को कैवल्य की प्राप्ति होती है। कैवल्य – केवल, अकेला। इसी को स्वरूप स्थिति कहते हैं तथा इसी को मोक्ष और अपवर्ग कहा जाता है। इस प्रकार अब प्रश्न उठता है कि जोहान (दुःखों का कारण) मिटा देने का क्या उपाय है। इसका उत्तर ऋषि सूत्र सं0 26 में दे रहे हैं।

17 चिकित्सा के साधन।

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपाय:।।26।।

विवेक + ख्याति + अविप्लवा + हान + उपाय:।

अर्थ : शुद्ध विवेक ख्याति हान का उपाय है। ऊपर हम लोग पढ़ आये हैं कि पुरुष और प्रकृति का संयोग ही दुख का कारण है और वह अविद्या से उत्पन्न होता है। उसके पश्चात् यह प्रश्न उठा था कि यह पुरुष और प्रकृति का संयोग किस तरह से मिटाया जाए तो ऋषि ने सूत्र सं0 25 में बतलाया था कि अविद्या को मिटा देने से पुरुष, प्रकृति का विवेक हो जाता है। इस सूत्र में ऋषि उस महान उपाय को बतला रहे हैं। विवेक ख्याति जब अविप्लव (अडोल) हो जाती है तब यही पुरुष को कैवल्य प्राप्त कराती है। विवेक, ख्याति जो दो शब्द आये हैं उनमें से विवेक का अर्थ है दृश्य और द्रष्टा का भेद,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

और ख्याति का अर्थ है ज्ञान अर्थात् चित्त और जीव की भिन्नता और पृथकता को जानना। यही विवेक ज्ञान है, अथवा दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि यह शरीर इन्द्रिय, मन, बुद्धि इत्यादि मुझ पुरुष अथवा जीव से भिन्न है। तब यह विवेक ज्ञान कहा जाएगा। विवेक ज्ञान यदि थोड़ी देर के लिए हो तो उससे कैवल्य की प्राप्ति नहीं होगी। जैसे किसी विद्वान अथवा संत के उपदेश से श्रोता को यह ज्ञान हो जाए कि जीव, प्रकृति से भिन्न है तो केवल श्रुत ज्ञान से ही मुक्ति नहीं होगी, बल्कि जब इस ज्ञान को श्रोता, उपदेश ग्रहण करने के पश्चात् अभ्यास द्वारा अपने साधना में लायेगा अर्थात् जब वह सदा जागरूक होकर यह ध्यान रखेगा कि वह थोड़ी देर के लिए भी प्राकृतिक वस्तुओं के लिए वशीभूत न हो जाए। तभी वह विवेक ख्याति वाला कहा जाएगा। इसलिए ऋषि ने सूत्र में अविप्लव शब्द का प्रयोग किया है। विप्लव का अर्थ है छिद्र। अविप्लव का अर्थ हुआ बिना छिद्र के। अर्थात् ऋषि के कहने का अभिप्राय यह है कि विवेक ख्याति, बिना छिद्र अर्थात् बिना रुकावट के सदा एक रस बना रहे तब यही हान का उपाय है। इसलिए सूत्रकार ने स्पष्ट कर दिया कि पुरुष-प्रकृति के भेद का साधारण ज्ञान मुक्तिदायक नहीं है। यह ज्ञान साधक को सदा बना रहना चाहिए कि वह प्रकृति से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

भिन्न सत्ता वाला है और प्रकृति के बल उसके भोग और अपवर्ग का साधन है। विवेक ख्याति में जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह साधारण सांसारिक ज्ञान से कहीं परे की वस्तु होती है। अब अगले सूत्र में ऋषि विवेक ख्याति से उत्पन्न होने वाले प्रज्ञा अथवा ज्ञान के विषय में बतलायेंगे।

तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा॥27॥

तस्य + सप्तधा + प्रान्तभूमिः + प्रज्ञा।

उसकी (विवेक ख्याति वाले योगी की) + सात प्रकार की + ऊँची अवस्था वाली + बुद्धि होती है।

भावार्थ : निर्मल शुद्ध विवेक ज्ञान प्राप्त योगियों की उच्चकोटि की जो प्रज्ञा होती है वह सात प्रकार की होती है। उन सात प्रकार की प्रज्ञाओं में से प्रथम चार प्रकार की प्रज्ञायें कर्म से विमुक्ति कराने वाली होती हैं और अन्त की तीन प्रकार की प्रज्ञायें चित्त से विमुक्ति कराने वाली होती हैं। इसलिए वे क्रम से कार्य विमुक्ति प्रज्ञा और चित्त विमुक्ति प्रज्ञा कहलाती हैं।

प्रथम चार प्रकार की कार्य विमुक्ति प्रज्ञायें।

(1) ज्ञेय शून्य अवस्था (2) हेय शून्य अवस्था (3) प्राप्य प्राप्त अवस्था (4) चिकीर्षा शून्य अवस्था।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ये चारों अवस्थायें कार्य विमुक्ति प्रज्ञा की हैं। इनके अतिरिक्त नीचे लिखी तीन चित्त विमुक्ति प्रज्ञायें हैं।

(1) चित्त सत्व कृतार्थता (2) गुण लीनता (3) आत्मस्थिति अर्थात् मुक्ति।

इन सातों प्रकार की प्रान्त भूमियों को अनुभव करते हुए योगी जीवन मुक्त कहलाता है। इस अवस्था में गुणातीत होकर केवल आत्म स्वरूप में मग्न रहता है। इस प्रकार विवेक ख्याति की सात प्रज्ञाओं को बतलाने के पश्चात् यह प्रश्न होता है, कि विवेक ख्याति तथा उसकी प्रज्ञाओं तक कैसे पहुँच सकता है। अर्थात् विवेक ख्याति की प्राप्ति कैसे हो सकती है। इसका उत्तर ऋषि अगले सूत्र सं0 28 में दे रहे हैं।

(18) अष्टाङ्ग योग

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेक ख्यातेः॥28॥

योग + अङ्ग + अनुष्ठानात् + अशुद्धि + क्षय + ज्ञानदीप्ति + अविवेक + ख्याति।

अर्थ : योग के अङ्गों के अनुष्ठान करने से + अशुद्धि के नाश होने पर + ज्ञान का प्रकाश + विवेक ख्याति पर्यन्त हो

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

जाता है।

भावार्थ : योग के अङ्गों के अनुष्ठान करने से सभी प्रकार की अशुद्धियों का नाश हो जाता है और अशुद्धियों के नाश हो जाने पर ऐसा ज्ञान का प्रकाश होता है जो विवेक ज्ञान अर्थात् पुरुष प्रकृति ज्ञान तक पहुँचा देता है। योग के आठों अंगों के अभ्यास करने से अविद्या, स्मिता इत्यादि पांचों क्लेश मिट जाते हैं और सम्यक ज्ञान का उदय हो जाता है और धीरे-धीरे जितना अभ्यास बढ़ता जायेगा उतना ही चित्त निर्मल होता जाएगा औ॰ ज्ञान का प्रकाश बढ़ते-बढ़ते विवेक ज्ञान तक पहुँचा देता है। विवेक ज्ञान के विषय में पिछले सूत्र सं0 27 में पढ़ चुके हैं कि वह सात प्रकार की ऊँची अवस्था वाला होता है। अब प्रश्न यह है कि ऋषि इस सूत्र में योग के आठ अंग बतलाये हैं। वे कौन-कौन से हैं उनका वर्णन अगले सूत्र 29 में दिया गया है।

यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणाध्यान समाधयोऽष्टावङ्गानि॥29॥

यम + नियम + आसन + प्राणायाम + प्रत्याहार + धारणा + ध्यान + समाधि + अष्टौ + अंगानि।

अर्थ : यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा,

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ध्यान, समाधि, यही योग के आठ अंग हैं। जिसके विषय में सूत्र सं० 28 में उल्लेख हो चुका है। योग के आठ अंग, विवेक ख्याति के साधन हैं। उनमें से अन्तिम तीन धारणा, ध्यान और समाधि, अन्तरंग योग कहे जाते हैं। यम नियम के द्वारा योग मार्ग में आने वाली रुकावटों को जीता जाता है। शेष आसन, प्राणायाम प्रत्याहार में यह सम्बन्ध है कि आसन की सिद्धि होने से प्राणायाम में स्थिरता होती है और प्राणायाम सिद्ध होने पर प्रत्याहार की प्राप्ति होती है। समाधि पाद में जो हम लोग अभ्यास, वैराग्य, श्रद्धा आदि पढ़े हैं और क्रिया योग में बतलाया हुआ तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान ये सब योग के आठों अंगों में आ जाते हैं। धारणा, ध्यान और समाधि बिना अभ्यास और वैराग्य के नहीं हो सकता। अभ्यास के अनुष्ठान से बार-बार योग का अभ्यास किया जाता है। जिससे धारणा, ध्यान, पक्का होकर समाधि तक हो जाता है। समाधि की भूमि, प्राप्त करने पर अब परम वैराग्य की आवश्यकता होती है, जिसके द्वारा विवेक ख्याति उत्पन्न होता है जो असम्प्रज्ञात समाधि अर्थात् कैवल्य तक ले जाता है। अब नियम इत्यादि के विषय में संक्षेप में आगे लिखा जायेगा।

(1) यम : यम व्यावहारिक जीवन से सम्बन्ध रखता है। मनुष्य का जीवन जब तक सात्विक नहीं होता तब तक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

उसका प्रभाव कल्याणकारी रूप से जनता के ऊपर नहीं पड़ता। यम के अभ्यास करने से अविद्या आदि जो पाँच क्लेश हैं, कमजोर पड़ जाते हैं।

(2) नियम : इसका सम्बन्ध अपने शरीर से है। अपने व्यक्तित्व से सम्बन्ध रखने वाले राजसी, तामसी वृत्तियों को मिटाकर सात्विक वृत्ति को जगा देना, यह नियम का काम है।

(3) आसन : शरीर में होने वाली जितनी क्रियायें हैं उनको तपोमय बना देता है। आसन की सिद्धि होने पर रजोगुणी प्रवृत्ति अर्थात् चंचलता दूर हो जाती है और तमोगुण अर्थात् आलस्य नष्ट हो जाता है।

(4) प्राणायाम : प्राणायाम के द्वारा शरीर के अन्दर आने जाने वाली वायु के ऊपर नियन्त्रण किया जाता है। उस नियन्त्रण के आधार पर शरीर की जितनी अशुद्धियाँ हैं; सब नष्ट हो जाती हैं और भावनायें दिव्य और सात्विक हो जाती हैं।

(5) प्रत्याहार : चित्त की बाहरी चंचलता को रोककर अन्तर्मुखी वृत्ति कर देना, जिसके द्वारा रजो और तमोगुण दब जाए और सात्विकता की लहर दौड़ जाए।

(6) धारणा : चित्त की चंचल अवस्था को मिटाकर किसी एक विषय में मनको लगा देना, यह धारणा का काम

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

है।

(7) ध्यान : जिस वस्तु में चित्त लगाया गया है उस विषय में बिना रुकावट के स्थिरता के साथ लगातार ध्यान लगाना चाहिए।

(8) समाधि : जिस वस्तु में ध्यान लगाया गया है उसमें ध्यान की वस्तु और ध्यान लगाने वाले का प्रयास सम्मिलित रहता है। जब ध्यायी ध्यान से शून्य हो जाता है, केवल ध्येय आकार रह जाता है, उसी को समाधि कहते हैं।

इन आठों अंगों में से पहले पाँच तो योग के बहिरंग साधन हैं और पिछले तीन अंतरंग साधन हैं। परन्तु इन तीनों अंतरंग साधनों से भी असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति नहीं होती। उसके लिए और आगे बढ़कर पर वैराग्य की आवश्यकता पड़ती है। यम किसको कहते हैं उसको विशेष रूप से जानने के लिए अगला सूत्र सं0 30 में देखिये।

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥30॥

यम के अन्दर पाँच वस्तु होती है। (1) अहिंसा (2) सत्य (3) अस्तेय (4) ब्रह्मचर्य (5) अपरिग्रह।

(1) अहिंसा : मन, वाणी और शरीर से किसी भी प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट नहीं देना, यही अहिंसा है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

यदि अपने कष्ट न दे परन्तु दूसरों से दिलवायें तो भी हिंसा ही हो जाएगी।

(2) सत्य : वस्तु का यथार्थ ज्ञान ही सत्य है। सत्य को शरीर से प्रकट करना शरीर का सत्य है। सत्य को वाणी से प्रकट करना वाणी का सत्य है। इस प्रकार शरीर वाणी और मन द्वारा सत्य प्रकट हो तो सत्य पालन कहा जाता है।

(3) अस्तेय : अस्तेय अर्थात् जो स्तेय न हो। किसी वस्तु को प्राप्त करने में लोभ और राग दो चीजें प्रधान होती हैं। जब अस्तेय अर्थात् किसी के अधिकार का हरण न करना जैसे चोरी न करना इत्यादि सिद्ध हो जाता है तो मनुष्य लोभ और राग से बच जाता है।

(4) ब्रह्मचर्य : मैथुन और विषय भोग से अलग रहते हुए सभी इन्द्रियों को वश में रखना ब्रह्मचर्य है। योगियों के लिए ब्रह्मचर्य में इन्द्रियों के अतिरिक्त प्राणों पर भी संयम करना आवश्यक होता है।

(5) अपरिग्रह : परिग्रह कहते हैं इकट्ठा करने को और अपरिग्रह का अर्थ है, इकट्ठा न करना अर्थात् योग के साधनों के लिए वस्तुओं का संग्रह नहीं करना चाहिए। पाँचों प्रकार के यमों का संक्षेप में वर्णन करने के पश्चात् ये पाँचों यम ऊँची अवस्था में पहुँचकर महाव्रत कहे जाते हैं। यमों की

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ऊँची अवस्था कब और कैसे होती है इसका वर्णन सूत्र सं0 31 में है।

जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ॥31॥

जातिं + देश + काल + समय + अविच्छिन्ना + सार्वभौमा + महाव्रतम्।

अर्थात् अहिंसा, सत्य आदि अपनी ऊँची अवस्था में महाव्रत कहे जाते हैं। जब जाति देश काल समय भी हद से बाहर हो जाते हैं।

उदाहरण – (1) जाति की हद से बाहर – जैसे कोई कहे कि मैं गाय को नहीं मारूँगा परन्तु अन्य पशुओं को मारने में दोष नहीं है। यह संकुचित भाव महाव्रत नहीं हुआ क्योंकि प्राण सबके बराबर हैं, अर्थात् गाय तथा अन्य सभी प्राणियों के प्राण की रक्षा अहिंसा से होगी। इसलिए यह केवल गाय जाति के पशु को नहीं मारेंगे, यह प्रतिज्ञा जाति द्वारा संकुचित हो गयी।

(2) देश द्वारा संकुचित : जैसे तीर्थ देशों में मदिरा नहीं पीयेंगे और अन्य स्थान में पीने में दोष नहीं है, यह भी संकुचित दोष है। यह महाव्रत नहीं है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

(3) काल द्वारा संकुचित : जैसे एकादशी के दिन मांस भक्षण नहीं करना चाहिए। अन्य दिनों में करने में दोष नहीं है। यह काल द्वारा संकुचित दोष है।

(4) सत्य द्वारा संकुचित : अर्थात् भुखमरी के समय चोरी करूँगा, अन्य समय में नहीं करूँगा, इत्यादि।

जब पाँचों यम सब काल और सब देश में समान रूप से पालन किये जाते हैं तब महाव्रत हो जाते हैं। यमों का वर्णन करने के पश्चात् अब नियमों का वर्णन सूत्र सं0 32 में किया जाता है।

(20) नियम

शौच संतोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानि नियमाः ॥32॥

शौच + संतोष + तपः + स्वाध्याय + ईश्वर प्राणिधानि + नियमाः। नियम के अन्दर पाँच चीजें पायी जाती हैं।

शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान।

(1) शौच : बाहर भीतर की सफाई। बाहर की सफाई जल, मिट्टी इत्यादि से होती है, और हठ योग की क्रिया में, वस्ति, धौंति, नेति इत्यादि क्रियाओं से भी होती है। परन्तु

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

शरीर की मानसिक अथवा आन्तरिक सफाई, ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार इत्यादि के छोड़ने से होती है।

(2) सन्तोष : अपने उचित शारीरिक परिश्रम के पश्चात् जो कुछ प्राप्त हो जाए, उसको हर्षपूर्वक स्वीकार करके सब परिस्थितियों में सन्तोष से रहना सन्तोष कहलाता है।

(3) तप : शरीर को इस प्रकार अभ्यासी बना देना कि द्वन्द्वों का प्रभाव न पड़े। जैसे – सर्दी–गर्मी सहन करना, राग–द्वेष से चलायमान न होना इत्यादि। इन्द्रियों को अभ्यास से वश में करना, यह तप का काम है।

(4) स्वाध्याय : वेद, उपनिषद, योग, सांख्य इत्यादि का पढ़ना और ओंकार तथा गायत्री का अर्थ सहित जप करना स्वाध्याय कहलाता है।

(5) ईश्वर प्रणिधान : अपने सभी कर्मों को फल सहित ईश्वर पर छोड़ देना और उसके न्याय को प्रसन्नतापूर्वक सहन करना, ईश्वर प्रणिधान कहलाता है। यम नियमों का पालन करने में साधकों को कभी–कभी बड़ी कठिनाई झेलनी पड़ती है और यम नियम अधिकतर टूट जाते हैं। यदि उनका पालन करने में कठिनाई हो तो उनको किस प्रकार दूर करने चाहिए यह अगले सूत्र सं0 33 में ऋषि बतलाते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

(21) यम नियम के फल

वितर्क बाधने प्रतिपक्षभावनम् ॥33॥

वितर्क + बाधने + प्रतिपक्ष + भावनम्

अर्थ : विरोधी तर्क + विघ्न + उलटी गति + चिन्ता।

भावार्थ : यम-नियम के पालन करने में जब विरोधी तर्क विघ्न रूप में खड़े हो जाएँ तो प्रतिपक्ष की भावना करनी चाहिए जैसे सत्य का विरोधी असत्य, अहिंसा का विरोधी हिंसा, सन्तोष का विरोधी असन्तोष इत्यादि। पाँच यम और पाँच नियम के विरोधी जब वितर्क खड़े हो जाएँ, तो प्रतिपक्ष की भावना करनी चाहिए। जैसे जब हिंसा की वृत्ति उत्पन्न हो जाए तो उसका विरोधी अहिंसा को तेजी से और दृढ़ता से अपनाना चाहिए। जब क्रोध उत्पन्न हो जाए तो उसका विरोधी (प्रतिपक्ष) भावना शान्ति का चिन्तन बार-बार करना चाहिए। अब प्रश्न होता है कि ये वितर्क कौन-कौन से हैं जो यम-नियम के पालन में विघ्न डालते हैं। उन वितर्कों में स्वरूप में इत्यादि अगले सूत्र में बतलाया जायेगा।

वितर्काहिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभ क्रोध मोह पूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

दुःखज्ञानान्त फलाइति प्रतिपक्षभावनम् ॥34॥

वितर्काहिंसादयः + कृतकारिताअनुमोदिता + लोभ क्रोध मोहपूर्वका + मृदुमध्यअधिमात्र दुःखअज्ञान + अनन्त फल इति प्रतिपक्ष भावनम्।

वितर्क हिंसा आदि को कहते हैं, वे कृत, कारित, अनुमोदित तीन प्रकार के होते हैं। कृत, कारित, अनुमोदित, उनका कारण लोभ, मोह, क्रोध होता है और उनका भेद तीन प्रकार का होता है मृदु, मध्य, अधिमात्र और उनका फल दो होता है दुःख और अज्ञान। इसी प्रकार प्रतिपक्ष की भावना की जाती है।

भावार्थ : यम-नियम के पालन करने में जब हिंसा, असत्य, अशौच इत्यादि जो विघ्न रूप में खड़े होते हैं वे कृत (स्वयं किया हुआ), कारित (करवाया हुआ), अनुमोदिता (किये हुए में समर्थन करना), ये तीनों प्रकार से दोष लगता है। चाहे मनुष्य कुकर्म खुद करे, या दूसरे से करवाये या किए हुए कुकर्म का समर्थन करे तो शास्त्र के अनुसार तीनों प्रकार से दोष लग जाता है। यह दोष युक्त कर्म मनुष्य चाहे लोभ, क्रोध और मोह के वशीभूत होकर करता हो, वे तीन प्रकार के होते हैं। (1) मृदु - साधारण, मध्य - बीच का (3) अधि मात्र - सबसे तेज, तीन प्रकार के भेद होते हैं। इस प्रकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

लोभ, मोह और क्रोध से भरे हुए कुकर्मों का परिणाम अनन्त दुःख और अज्ञान होता है। इसीलिए सूत्र का अभिप्राय यह है कि जब कभी यम, नियम के पालन करने में विघ्न उपस्थित हो जाए तो इस प्रकार की भावना करनी चाहिए कि यम और नियमों को तोड़ देने से मैं दुःखी और अज्ञानी हो जाऊँगा। कुकर्म न मुझे स्वयं करना चाहिए, न दूसरों से करवाना चाहिए न दूसरों के लिए हुए कुकर्म का समर्थन करना चाहिए क्योंकि परिणाम में दुःख ही प्राप्त होगा। इस प्रकार अवगुणों के विपरीत में गुणों को धारण करके यम और नियम की रक्षा की जाती है। इसी को प्रतिपक्ष भावना कहते हैं।

अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ बैरत्यागः ॥35॥

भावार्थ : अहिंसा की दृढ़ प्रतिष्ठा अर्थात् दृढ़ होने पर, तत्सन्निधौ (उसके निकट) जितने हिंसक और क्रूर प्राणी हैं, सब बैर त्याग देते हैं। इस सूत्र में यमों के पालन का फल दिया जा रहा है। पहला यम अहिंसा के सिद्ध होने से योगी के निकट हिंसा करने वाले चाहे मनुष्य या पशु सब अहिंसक बन जाते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥36॥

दूसरा यम अर्थात् सत्य की सिद्धि होने से वाणी में क्रिया के फल की प्राप्ति जैसी सिद्धि हो जाती है। अर्थात् जो सदा सत्य बोलता है वह यदि किसी को कह दे कि तुम धर्मात्मा हो जा और किसी को कह दे कि तुम्हारा दुःख निवारण हो जाए तो वह अवश्य हो जायेगा। उसकी वाणी से वही बात निकलती है जो क्रिया रूप से होने वाली है।

अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥37॥

अस्तेय की सिद्धि हो जाने से सब प्रकार के रत्न की प्राप्ति हो जाती है।

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्य लाभः ॥38॥

ब्रह्मचर्य की सिद्धि हो जाने से वीर्य अर्थात् सर्वश्रेष्ठ शक्तियों का लाभ होता है।

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथान्तासंबोधः ॥39॥

अपरिग्रह की सिद्धि हो जाने पर योगी को यह ज्ञान हो जाता है कि उसका पिछला जन्म कैसा और कहाँ था, वर्तमान जीवन कैसे प्राप्त हुआ तथा भविष्य में जन्म कहाँ होगा। यह

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant

सब जानकारी प्राप्त हो जाती है। यमों की सिद्धियों के बाद अब नियमों की सिद्धियों को बतलाते हैं।

शौचात्स्वाङ्गजुगुप्सा परैर संसर्गः ॥40॥

पहला नियम शौच की सिद्धि होने पर अपने अंगों से घृणा और दूसरों के अंगों से असंसर्ग हो जाता है। शौच अर्थात् शुद्धता की भावना जब योगी में हो जाती है तो उसका हृदय शुद्ध हो जाता है। उसको गुप्तांग इत्यादि से घृणा हो जाती है। इस हेतु वह इन्द्रियों के प्रयोग से अलग हो जाता है। दूसरों से भी अलग हो जाता है।

सत्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रिय-जयात्मदर्शनयोगयत्वानि च ॥41॥

इस सूत्र में शौच से प्राप्त होने वाली अन्य सिद्धियाँ जो सूत्र सं0 40 में नहीं बतलायी गई हैं, उनका वर्णन है। शौच की शुद्धि होने से चित्त की शुद्धि, सौमनस्य = मन की शुद्धि, एकाग्रता इन्द्रियजय = इन्द्रियों को जीतना और आत्मा के दर्शन करने की योग्यतायें, इतनी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं।

संतोषादनुत्तम सुखलाभः ॥42॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

सन्तोष की सिद्धि होने से सबसे उत्तम सुख की प्राप्ति हो जाती है, ऐसा उत्तम सुख जिससे बढ़कर दूसरा सुख न हो।

कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिसंयात्तपसः ॥43॥

तप के द्वारा जितने प्रकार की अशुद्धियाँ हैं सब नष्ट हो जाती है। शरीर और इन्द्रियाँ बिल्कुल निर्मल हो जाती हैं।

स्वाध्यायादिष्ट देवता सम्प्रयोगः ॥44॥

स्वाध्याय की सिद्धि होने से साक्षात् इष्ट देवता का दर्शन होता है।

समाधि सिद्धिरीश्वर प्रणिधानात् ॥45॥

ईश्वर प्रणिधान (भक्ति विशेष) की सिद्धि हो जाने से समाधि लगने लगती है। यम-नियम से प्राप्त होने वाली सिद्धियों का वर्णन करके आसन इत्यादि के बारे में बतलाते हैं।

(22) आसन

स्थिरसुखमासनम् ॥46॥

जो स्थिर हो सुखदायी हो वही आसन है। जिस विद्या से मनुष्य बिना हिलेडुले एक ही आसन पर बैठ सके और कष्ट

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

का अनुभव न करे तो वही आसन है। अगले सूत्र सं0 47 में आसन सिद्धि का उपाय बताते हैं।

प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ॥47॥

आसन की सिद्धि दो उपायों से होती है। (1) प्रयत्न की शिथिलता, (2) अन्त में ध्यान लगा देना। आरम्भ में जब मनुष्य आसन करता है तो स्थिरता नहीं रहती है, शरीर हिलता-डुलता रहता है और देर तक बैठने में कठिनाई होती है, परन्तु आसन सिद्ध होने पर जिस प्रयत्न से साधक आसन पर बैठता था, उसकी आवश्यकता नहीं रह जाती। अभ्यास द्वारा अनायास ही आसन पर सुख से बैठ जाता है और उसका मन स्थिर हो जाता है और उसका मन जो स्थिर पदार्थ आकाश इत्यादि है उसका मन निश्चल हो जाता है। अगले सूत्र में आसन की सिद्धि का फल बताते हैं।

ततोद्वन्द्वानभिघातः ॥48॥

आसन की सिद्धि होने से साधक को द्वन्द्वों की चोट नहीं लगती है। अर्थात् सर्दी, गर्मी, मान-अपमान से मन चलायमान नहीं होता। अगले मन्त्र में प्राणायाम के विषय में बतलाते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

(23) प्राणायाम।

तस्मिन सतिश्वास प्रश्वासयोर्गतिविच्छेद: प्राणायाम: ॥49॥

उस आसन के सिद्ध होने पर श्वास और प्रश्वास (अर्थात् हवा का लेना और छोड़ना) की गति को रोकना प्राणायाम कहलाता है अगले सूत्र में प्राणायाम के भेद और स्वरूप को बतलाते हैं।

वाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देश काल संख्याभि: परिदृष्टोदीर्घसूक्ष्म: ॥50॥

वाह्य वृत्ति, आभ्यन्तर वृत्ति और स्तम्भन वृत्ति, ये तीन प्रकार के प्राणायाम होते हैं। जो देश, काल, संख्या के द्वारा देखा हुआ होता है वह लम्बा और हल्का हो जाता है।

वाह्य वृत्ति अर्थात् श्वास को बाहर निकाल कर उसकी गति को रोक देना।

आभ्यन्तर वृत्ति : श्वास को अन्दर ले जाकर उसकी गति को रोक देना।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

स्तम्भन वृत्ति : अर्थात् श्वास को कुम्भक प्राणायाम के द्वारा रोकना।

ये तीन प्रकार के प्राणायाम हैं जिन्हें दूसरे शब्दों में रेचक, पूरक और कुम्भक भी कहा जाता है। इन तीनों में से प्रत्येक के तीन-तीन प्रकार और हो जाते हैं।

(1) देश प्रदीष्ट - देश से देखा हुआ जैसे श्वास को मूलाधार तक ले जाना इत्यादि।

(2) काल प्रदीष्ट - समय से देखा हुआ जैसे 1 सेकण्ड रेचक, 2 सेकण्ड पूरक और 4 सेकण्ड कुम्भक। (3) संख्या प्रदीष्ट - संख्या से देखा हुआ जैसे इतनी संख्या में पहले, दूसरे, तीसरे प्राणायाम का करना। अब तीसरे प्राणायाम के बाद चौथे प्राणायाम के विषय में लिखते हैं।

वाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी चतुर्थः ।।51।।

बाहर अन्दर के विषय को फेंकने वाला अर्थात् आलोचना करने वाला चौथा प्राणायाम कहलाता है। चौथे प्राणायाम की विधि किसी योग्य गुरु से समझना और सीखना चाहिए। प्राणायाम के सिद्ध होने से क्या लाभ होता है, अगले सूत्र में बतलाते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥52॥

उस प्राणायाम के अभ्यास होने से प्रकाश के ऊपर जो पर्दा पड़ा है अर्थात् ज्ञान के ऊपर अज्ञान का पर्दा चढ़ा है वह नष्ट हो जाता है और अन्य क्या लाभ होता है उसे अगले सूत्र में बतलाते हैं।

धारणासु च योग्यता मनसः ॥53॥

प्राणायाम का दूसरा फल यह है कि प्राणायाम के द्वारा मनुष्य को धारणा की प्राप्ति की योग्यता हो जाती है। अगले सूत्र में प्रत्याहार के विषय में बतलाते हैं।

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥54॥

प्रत्याहार कहते हैं पीछे हटने को अर्थात् इन्द्रियों को उनके विषयों से पीछे हटाना प्रत्याहार है। सूत्र का अर्थ हुआ कि इन्द्रियाँ जब अपने विषयों के साथ सम्बन्ध नहीं रखती हैं तो वे चित्त के स्वरूप का अनुकरण करने लगती हैं; इसी को प्रत्याहार कहते हैं। प्रत्याहार से क्या लाभ है, इसे अगले सूत्र में बतलाते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ॥55॥

उस प्रत्याहार के सिद्ध हो जाने से सारी इन्द्रियाँ पूरे रूप में वश में आ जाती हैं।

साधन पाद समाप्त

***

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

विभूति पाद

योग के जो अंग हैं उनमें से पहले पाँच अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम को वहिरंग योग कहते हैं। इन पांचों वहिरंग योगों का वर्णन, साधन पाद में किया गया है। शेष योग के तीन अंग धारणा, ध्यान और समाधि को अन्तरंग योग कहते हैं। इन अन्तरंग योगों का वर्णन इस तृतीय पाद में है। धारणा, ध्यान, समाधि इन तीनों अन्तरंग योगों को एक साथ संयम कहा जाता है। इस संयम के सिद्ध हो जाने से नाना प्रकार की सिद्धियाँ और प्राप्त होती हैं। इन सिद्धियों का भी वर्णन इसी विभूति पाद में हैं। सर्वप्रथम धारणा के विषय में लिखते हैं।

25. धारणा

देशबन्धाश्चित्तस्य धारणा ।।1।।

चित्त की वृत्ति को किसी स्थान विशेष में बाँधना धारणा कहलाता है। चित्त की वृत्तियाँ इधर-उधर जाया करती हैं। उनको किसी विशेष स्थान जैसे ध्रुवतारा, नाक का अग्र भाग अथवा हृदय कमल इत्यादि में ठहराना, धारणा कहलाती है। धारणा के लिए जो वस्तु ली जाती है उसे ध्येय कहते हैं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS MoE-Gran

अर्थात् ध्येय का अर्थ होता है, जिसमें ध्यान लगाया जाए। अब ध्यान के विषय में बतलाते हैं।

26. ध्यान

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥2॥

उस चित्त की वृत्ति का एक सा बना रहना ध्यान है। धारणा में मनुष्य किसी वस्तु में ध्यान ठहराता है, जो इधर-उधर भटका करता है। जब मन का भटकना बन्द हो जाए और केवल ध्यान की वस्तु में ही मन लगा रहे तब उसी को ध्यान कहते हैं। अब समाधि के बारे में बतलाते हैं।

27. समाधि

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥3॥

वही ध्यान ही समाधि बन जाता है। जब उसमें ध्येय अर्थ मात्र में भासता है और ध्यान का स्वरूप शून्य जैसा हो जाता है। जब ध्यान इतना प्रबल हो जाए कि ध्यायी और ध्यान अपने स्वरूप से सर्वथा शून्य जैसा होकर ध्येय स्वरूप मात्र से भासने लगे तो समाधि होती है। समाधि के दो अंग हैं -

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

धारणा और ध्यान। धारणा, ध्यान और समाधि को त्रिपुटी कहते हैं। त्रिपुटी के अन्दर तीन वस्तुएँ होती हैं। ध्यायी, ध्यान और ध्येय। ध्यायी–ध्यान करने वाले को कहते हैं। ध्यान–ध्यायी की क्रिया द्वारा ध्यान किया जाता है और जिस वस्तु का ध्यान किया जाता है वह ध्येय कहलाता है। संयम के विषय में आगे बतलाते हैं।

28. वृत्तियों के निरोध होने से कुल तीन बातें।

त्रयमेकत्र संयमः ।।4।।

तीनों धारणा, ध्यान और समाधि जब किसी एक विषय में लग जाते हैं तो संयम कहलाता है। धारणा, ध्यान और समाधि की प्रथम अवस्था है। जब धारणा, ध्यान और समाधि अर्थात् संयम के द्वारा ही नाना प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं। संयम के द्वारा क्या होता है, आगे बतलाते हैं।

तज्जयात्प्रज्ञालोकः ।।5।।

उस संयम के सिद्ध होने से समाधि प्रज्ञा का प्रकाश होता है जिससे ध्येय का ज्ञान यथार्थ रूप से होने लगता है और नाना प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। संयम का

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

उपयोग कहाँ होता है, यह अगले सूत्र में बतलाते हैं।

तस्यभूमिषु विनियोगः ॥6॥

उस संयम का उपयोग नाना प्रकार की भूमियों में होता है। भूमि से अभिप्राय चित्तभूमि से है और विनियोग का अर्थ लगाने से है और उस संयम का सूक्ष्म और स्थूल वस्तु के आलम्बन के भेद से चित्त की वृत्तियों का पता लगाया जाता है। चित्त की स्थूलवृत्ति वाली भूमि, नीची भूमि है औंर उस पर विजय प्राप्त करके सूक्ष्म विषय में चित्त को लगाना चाहिए।

त्रयमन्तरङ्गं पूर्वेभ्यः ॥7॥

यह तीनों अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि ये अन्तरंग हैं बाकी अष्टांग में शेष पाँच यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार बहिरंग हैं। असम्प्रज्ञात समाधि में धारणा, ध्यान और समाधि के आधार पर ही समाधि लगती है।

तदपि बहिरङ्गं निर्बीजस्य ॥8॥

वह भी बाहर का अंग है। निर्वीज अर्थात् असम्प्रज्ञात समाधि का, अर्थात् ये तीनों धारणा, ध्यान और समाधि भी असम्प्रज्ञात समाधि के लिए वहिरंग हैं। जैसे सम्प्रज्ञात समाधि

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust, Funding IKS-MoE, Grant-

के लिए यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार वहिरंग हैं वैसे ही असम्प्रज्ञात समाधि के लिए धारणा, ध्यान और समाधि भी वहिरंग हैं। असम्प्रज्ञात समाधि को निर्वीज समाधि कहते हैं। निर्वीज समाधि में धारणा, ध्यान और समाधि की भावनायें ये सब समाप्त हो जाती हैं। निर्वीज समाधि के लिए अंतरंग पर वैराग्य है। जो कि असम्प्रज्ञात समाधि लगाने में सहायता देती है।

व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः ॥9॥

इस सूत्र में निरोध परिणाम की व्याख्या कर रहे हैं। निरोध परिणाम किसको कहते हैं ? इसका उत्तर सूत्रकार इस प्रकार दे रहे हैं कि व्योत्थान के संस्कारों का दबना और प्रकट होना, यह जो निरोध काल में होने वाले चित्त से सम्बन्ध रखता है वही निरोध परिणाम कहलाता है।

भावार्थ : मतलब यह है कि व्यौत्थान के संस्कारों का दबना और निरोध के संस्कारों का प्रकट होना, यह जो निरोध काल में दोनों प्रकार के संस्कार पड़ते हैं, इन्हीं को निरोध परिणाम कहते हैं। व्यौत्थान के अन्तर्गत क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त ये तीन अवस्थायें आती हैं। एकाग्रता इनमें आगे की वस्तु है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

एकाग्रता के सम्बन्ध में क्षिप्र, मूढ़ और विक्षिप्त व्यौत्थान कहे जाते हैं और एकाग्रता भी निरोध के सम्बन्ध से व्यौत्थान बन जाती है। इसलिए समाधि के लिए एकाग्रता भी व्यौत्थान की अवस्था ही है। एकाग्रता से बहुत आगे बढ़ने पर समाधि लगती है। अभिभव शब्द का अर्थ होता है छिपना अथवा निर्वल, निरोध परिणाम का अर्थ होता है कि चित्त सतो, रजो और तमोगुण स्वभाव वाला है इसलिए परिणामी और इसमें प्रत्येक क्षण कोई-न-कोई परिणाम हो रहा है। इसलिए निरोध की जो क्रिया की जाती है उसका भी परिणाम होता है। अब निरोध के संस्कार का फल बचा है। उसे अगले सूत्र सं0 10 में बतलाते हैं।

तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ॥10॥

तस्य - उस चित्त का, प्रशान्त वाहिता - प्रशान्त बहना, संस्कारात्-निरोध संस्कार से होता है।

भावार्थ : निरोध संस्कार से चित्त की शान्त प्रवाह वाली गति हो जाती है। निरोध संस्कार के अभ्यास से जब निरोध संस्कार प्रबल हो जाते हैं और व्युत्थान संस्कार दब जाते हैं तो चित्त एकदम निर्मल हो जाता है। इस निर्मल अवस्था में चित्त में जो संस्कार रहता है वह एक रस (प्रशान्त)

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

बहता रहता है। उसी को प्रशान्त वाहिता संस्कार कहते हैं।

सर्वार्थतैकाग्रतया: क्षयोदयौ चित्तस्यसमाधि परिणाम: ॥11॥

निरोध परिणाम बतलाकर अब समाधि परिणाम बतलाते हैं। सर्वार्थता और एकाग्रता का क्षय और उदय होना चित्त का समाधि अवस्था में समाधि परिणाम कहा जाता है। चित्त की सर्वार्थता और एकाग्रता रूप धर्मों का नाश होना और प्रकट होना, यही चित्त का समाधि अवस्था में परिणाम है। सर्वार्थता का तात्पर्य है कि सब विषयों की तरफ जाना, यह विक्षेप की अवस्था है। एकाग्रता जब सब विषयों को त्याग कर एक विषय में टिक जाता है तो एकाग्रता परिणाम कहा जाता है। विक्षिप्तता और एकाग्रता दोनों चित्त के धर्म हैं। जब चित्त की विक्षिप्त अवस्था दब जाती है और एकाग्रता धर्म उदय होता है तो समाधि परिणाम अर्थात् असम्प्रज्ञात काल में होने वाला चित्त का परिणाम है। अब इसके बाद अगले सूत्र सं0 12 में एकाग्रता परिणाम को बतलाते हैं।

तत: पुन: शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रता परिणाम: ॥12॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

तब फिर शान्त और उदय हुई समान वृत्तियाँ चित्त की एकाग्रता परिणाम है। अर्थात् एकाग्रता परिणाम में चित्त में एक ही समान की वृत्तियाँ प्रकट और नष्ट हुआ करती हैं। अब अगले सूत्र में (सं0 13 में) भूत और इन्द्रियों के परिणाम को बतलाते हैं।

एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्था परिणामा व्याख्याता: ।।13।।

इसी से ही (चित्त के परिणाम) भूत इन्द्रियों में, धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम और अवस्था परिणाम का व्यक्त किये हुए समझना चाहिए अर्थात् चित्त के परिणाम से ही पाँच भूतों और पंच इन्द्रियों के सम्बन्ध में ही धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम और अवस्था परिणाम बताये गये हैं।

धर्म परिणाम : चित्त में पूर्व धर्म की निवृत्ति होने पर अन्य धर्म की प्राप्ति होना यह धर्म परिणाम है। जैसे धर्म चित्त के व्यौत्थान और निरोध के दो संस्कारों में से व्यौत्थान संस्कार का दबना और निरोध संस्कार का उदय होना धर्म परिणाम कहलाता है। भूतों में धर्म परिणाम जैसे मिट्टी का रूप, मिट्टी रूप धर्म को छोड़कर घड़ा रूपी धर्म को प्राप्त करना धर्म परिणाम हुआ।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

इन्द्रिय परिणाम : जैसे नेत्र लाल, पीला, हरा कई रंगों को देखता है उसमें से एक रूप को छोड़कर दूसरे का ज्ञान हो जाए यह इन्द्रिय परिणाम है।

लक्षण परिणाम : लक्षण परिणाम को काल परिणाम भी कहते हैं जो तीन प्रकार का होता है। भूत, भविष्य और वर्तमान। इसके भी भूत और इन्द्रियों के सम्बन्ध में भी भिन्न परिणाम हो जाते हैं।

अवस्था परिणाम : एक धर्म के भविष्य लक्षण से वर्तमान लक्षण में प्रकट होने तक उसकी अवस्था में दृढ़ करने और उसी प्रकार वर्तमान लक्षण से भूत लक्षण तक जाने तक उसकी अवस्था को दुर्बल करने में जो प्रतिक्षण परिणाम हो रहा है वह अवस्था परिणाम है। इसलिए गुणवृत्ति भी धर्म लक्षण और अवस्था के परिणाम से खाली नहीं रहता। ऊपर बतलाये हुए तीनों परिणाम जिस धर्मी के धर्म हैं, और अब धर्मों के स्वरूप को अगले सूत्र सं0 14 में बतलाये हैं।

शान्तोदिताव्ययदेश्य धर्मानुपाती धर्मी ।।14।।

ऊपर के तीनों परिणामों को बतलाकर अब धर्मी के स्वरूप इस सूत्र में इस प्रकार बतला रहे हैं। अव्यय देश = भविष्य, धर्मानुपाती – धर्म में रहने वाला धर्मी है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE, Gran

भावार्थ : उन परिणामों के भूत वर्तमान और भविष्य धर्मों में रहने वाला धर्मी है। शान्त, वे धर्म हैं जो अपना-अपना व्यापार करके भूतकाल में चले गये हैं। जैसे घड़ा टूटकर मिट्टी में मिल जाए तो वे वर्तमान धर्म से अतीत अथवा भूत धर्म में चला गया। उदित वे धर्म हैं जो भूतकाल को छोड़कर वर्तमान में प्रकट हो रहे हैं। जैसे घड़ा अपना पुराना भूत धर्म मिट्टी को छोड़कर घड़ा रूप में हो गया है। अव्यय देश जो भविष्य में शान्तिरूप से छिपा रहता है और जिसका वर्णन नहीं हो सकता। धर्म, धर्मी के विशेष रूप आकार हैं और धर्मी सामान्य रूप से द्रव्य है जो सारे आकाशों में अनुगत है। एक ध र्मी के अनेक धर्म किस प्रकार हो सकते हैं, यह अगले सूत्र में बतलाते हैं।

क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः ॥15॥

क्रमान्यत्वं - भेद को छोड़कर, परिणाम हेतु - परिणाम के भेद में हेतु हैं।

भावार्थ : क्रमों के भेद के कारण परिणाम में भी भेद होता है। एक क्रम से एक परिणाम होता है। एक धर्म के अनेक प्रकार के क्रम हैं। जितने प्रकार के क्रम होते हैं, उतने ही प्रकार के परिणाम होते हैं। उदाहरण - मिट्टी के चूर्ण से

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

पिण्ड बना, पिण्ड से घड़ा वना, घड़ा टूटकर ठीकरे बना और ठीकरे से फिर चूर्ण हो गया। इन्हीं क्रमों के भेद से इनके परिणाम भेद होते हैं। इसमें धर्म परिणाम, लक्षण परिणाम इत्यादि होते हैं। अब संयम के विषय में अगले सूत्र में बतलायेंगे कि किस वस्तु में संयम करने से किस प्रकार की विभूति प्राप्त होगी।

परिणामत्रयसंयमादतीतानागत ज्ञानम् ॥16॥

तीनों परिणामों में संयम करने से भूत और भविष्य का ज्ञान होता है। तीनों परिणाम, अर्थात् धर्म, लक्षण और अवस्था, इन्हीं तीनों परिणामों में जब योगी संयम करता है तब इन तीनों परिणामों के साक्षात होने पर उस वस्तु के सब क्रमों का अर्थात् जिस-जिस अवस्था में होकर वह वस्तु उस रूप में पहुँची है अथवा जिस अवस्था में आगे पहुँचेगी, यह सब जान जाता है।

शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात् संकरस्तत्प्रविभागसंयमात् सर्वभूतरुत ज्ञानम् ॥17॥

शब्द + अर्थ + प्रत्ययानाम्, इतर तरं + अध्यासात +

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

साकर + तत् + प्रविभाग + संयमात + सर्व + भूत + तरू + ज्ञानम्।

शब्द अर्थ ज्ञान को + परस्पर + अध्यास से + अभेद यानी मिल जाना + उस विभागों को + संयम करने से + सर्व + प्राणियों के भाषा का ज्ञान हो जाता है।

अर्थ : साधारण रूप से शब्द अर्थ और ज्ञान एक दूसरे से इस तरह से घुल मिल गये हैं कि अभेद सा प्रकट होता है परन्तु शब्द अर्थ और ज्ञान तीनों पृथक-पृथक वस्तु हैं और इन तीनों भिन्न वस्तुओं को अपनी संयम समाधि के द्वारा अलग-अलग अनुभव करता है। इसलिए दुनिया के किसी भी प्राणी की भाषा को वह समझ सकता है।

संस्कार साक्षात्करणात पूर्वजातिज्ञानम ॥18॥

संस्कार + साक्षात् + करणात् + पूर्व + जाति + ज्ञानम।

जो योगी संस्कारों को साक्षात् करने की क्षमता रखते हैं उनको पूर्व जन्म का ज्ञान हो जाता है। संस्कार दो प्रकार के होते हैं (1) जो संस्कार स्मृति के बीज रूप में चित्त के अन्दर दबे रहते हैं, जो अवसर आने पर स्मरण हो जाते हैं और जिनके द्वारा पाँचों क्लेश उत्पन्न होते हैं, जैसे अविद्या, स्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding:IKS-MoE-Grant-

(2) कर्म के फल, जिसको विपाक कहते हैं। इसका संस्कार जब चित्त पर पड़ा रहता है तब जाति, आयु और भोग की प्राप्ति होती है। इसलिए जो योगी उपरोक्त प्रथम और द्वितीय प्रकार के संस्कारों को संयम के द्वारा अनुभव कर सकता है उसे पूर्व जन्म का ज्ञान हो सकता है।

प्रत्ययस्य परचित्त ज्ञानम् ॥19॥

प्रत्ययस्य – दूसरे के चित्त की वृत्ति में संयम करने से, दूसरे के चित्त का ज्ञान हो जाता है। अर्थात् यदि योगी दूसरे के मन की बात जानना चाहे तो उसकी बाहरी आकृति, आँख, चेहरा इत्यादि के अनुभव से जान सकता है कि उसके चित्त में क्या है ? परन्तु दूसरे के चित्त का विषय क्या है, इसको जानने में बड़ी कठिनाई होगी और प्रयास से यह भी जाना जा सकता है।

न च तत्सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात् ॥20॥

न च – न ही वह चित्त, से आत्मालम्बन – साक्षात् होता है पर वह दूसरे का चित्त अपने विषय सहित साक्षात नहीं होता क्योंकि वह विषय सहित चित्त उस योगी के संयम का विषय नहीं है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अर्थात् पिछले सूत्र में जो दूसरे के चित्त में संयम करने की बात कही गयी है, उसका तात्पर्य केवल इतना ही है कि योगी केवल दूसरे के चित्त का राग द्वेष ही आरम्भ में ही जान सकता है परन्तु उसके चित्त के सारे विषय को नहीं जान सकता है। जब राग द्वेष आदि को पृथक करके संयम किया जाए तो चित्त के विषय का भी ज्ञान हो सकता है।

कायरूपसंयमात् तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुः प्रकाशासम्प्रयोगेऽन्तर्धानम ॥21॥

कार्य + रूप + संयमात् + तद्ग्राह्य + शक्ति + स्तम्भ + चक्षु + प्रकाश + असम्प्रयोगे + अन्तर्धानम्॥

अपने शरीर के रूप में संयम करने से उस रूप की ग्राह्य शक्ति रुक जाती है। दूसरे की आँख के प्रकाश से सम्बन्ध नहीं रह जाता, तब योगी छिप जाता है।

अर्थात् : यदि योगी चाहे तो सबके बीच में रहते हुए भी अपने को छिपा सकता है। उसका उपाय यह है कि वह अपने शरीर में संयम करे। इस संयम के द्वारा दूसरे की आँख के देखने की शक्ति, योगी के शरीर पर काम नहीं करेगी।

सोपक्रमं निरूपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्त ज्ञानमरिष्टभ्योवा ॥22॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

सोपक्रम - तीव्र वेग वाला, निरूप क्रम - मंद वेग वाला, ये जो दो प्रकार के कर्म होते हैं, इनमें संयम करने से, उपरान्त मृत्यु का ज्ञान हो जाता है अथवा अरिष्टों अर्थात् उलटे चिन्हों के द्वारा मृत्यु का ज्ञान हो जाता है।

भावार्थ : भाव यह है कि संयम के द्वारा योगियों को ज्ञान होता है और उलटे चिन्हों के द्वारा साधारण लोगों को भी ज्ञान हो जाता है। जैसे आँखों की पुतलियों को अपने हाथों से दबाया जाए और भृकुटि के मध्य में प्रकाश नजर न आये तो जानना चाहिए कि मृत्यु निकट है। (2) आकाश के तारे उलटा पुलटा नजर आवें अथवा मरे हुए व्यक्ति इस प्रकार दिखाई दें मानो सामने खड़े हैं, तो इनसे अरिष्टों अर्थात् उलटा चिन्हों के द्वारा मृत्यु को निकट समझना चाहिए।

मैत्र्यादिषु बलानि ॥23॥

मैत्री आदि में संयम करने से योगी को मैत्री आदि में बल प्राप्त हो जाता है। आदि शब्द मैत्री के अलावा करुणा और मुदिता के लिए प्रयोग हुआ है। यह तो पाद के तैंतीसवें सूत्र में भी करुणा और मुदिता के विषय में लिखा हुआ है। इसमें संयम करने से एक-एक करके प्रत्येक में बल प्राप्त होता है। जैसे मैत्री के संयम करने से विश्व का मित्र बन जाता

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

है, करुणा से संयम करने से सब प्राणियों के दुख को दूर कर सकता है। मुदिता में संयम करने से पक्षपात दूर हो जाता है।

बलेषु हस्तिबलादीनि ॥24॥

हाथी आदि के बल में जब योगी संयम करता है तो हाथी आदि के बल को प्राप्त हो जाता है। आदि शब्द से यहाँ भाव यह है कि हाथी के अलावा जो सिंह आदि बलवान पशु हैं उनमें उनके बल में संयम करने से अथवा वायु आदि के बल में करने से सिंह और वायु के बल को प्राप्त हो जाता है। अर्थात् योगी जिस प्रकार के बल में संयम करेगा, उसी के बल को प्राप्त करेगा।

प्रवृत्त्यालोकन्यासात् सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् ॥25॥

प्रवृत्ति + आलोक + न्यासात् + सूक्ष्म + व्यवहित + विप्रकृष्ट + ज्ञानम।

ज्योतिषमयी प्रकृति जिसका वर्णन पहले पाद के 36वें सूत्र में हो चुका है + आलोक = प्रकाश, न्यासात = डालने से, सूक्ष्म = जो इन्द्रियों से देखा न जा सके, व्यवहित = छिपा हुआ, विप्रकृष्ट = दूर की वस्तु, ज्ञानम = ज्ञान होता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

अर्थ : जब योगी ज्योतिषमयी प्रवृत्ति में संयम करता है तो संसार की कोई वस्तु छिपी हो अथवा आड़ में हो जैसे भूमि के अन्दर पड़े द्रव्य को भी जान सकता है। इसके अतिरिक्त जो वस्तु बहुत दूर होने के कारण आँख से ओझल है उसका भी ज्ञान कर सकता है।

भुवन ज्ञानम् सूर्ये संयमात् ॥26॥

भुवन का ज्ञान सूर्य में संयम करने से हो जाता है। योगी भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम् इन सातों लोक में से जिस लोक को चाहे सूर्य में संयम लगाकर ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

चन्द्रताराव्यूहज्ञानम् ॥27॥

चन्द्रमा में संयम करने से योगी ताराओं के समूह को जान सकता है। चन्द्रमा में संयम करने से योगी को चन्द्रमास के होने वाले राशियों का ज्ञान हो जाता है और प्रत्येक तारा व्यूह यानी मंडली राशियों की आकर्षण और विकर्षण शक्तियों के द्वारा चन्द्रमा से सम्बन्ध रखता है। उससे सम्बन्ध रखने वाले तारामण्डली का दर्शन इत्यादि कर सकता है।

ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥28॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

ध्रुव तारा में संयम करने से योगी ताराओं की गति को जान सकता है ध्रुव तारा में संयम करने से कौन तारा किस राशि, किस नक्षत्र में, किस गति से प्रवेश किया, जाना जा सकता है।

नोट - ऊपर बतलायी गयी सभी सिद्धियाँ अपने शरीर से बाहर रहने वाली वस्तुओं से सम्बन्ध रखती हैं। अब सूत्र सं० 29 में शरीर के अन्दर साधना करने से जो सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, उनका वर्णन है।

नाभिचक्रे कायव्यूह ज्ञानम् ।।29।।

नाभि चक्र में संयम करने से शरीर के अन्दर की रचना तथा व्यूह का ज्ञान हो जाता है। 16 (सोलह) सिरों वाला नाभिचक्र शरीर के बीच में स्थित है। यहाँ से शरीर की मुख्य नाड़ियों से सम्बन्ध है। इसलिए नाभि के चक्र में संयम करने से शरीर के कफ, पित्त, वायु, रक्त, मांस, नाड़ी, हड्डी, चर्बी, वीर्य अर्थात् सातों धातुओं का ज्ञान हो जाता है।

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ।।30।।

कण्ठ के कूप अर्थात् गड्ढा में संयम करने से भूख और प्यास निवृत्त हो जाती है। जिह्वा के नीचे सूत के समान एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

नस है उसी के नीचे एक गड्ढा है उसी को कण्ठ कूप कहते हैं। इसी कंठ में प्राण वायु को जाने से भूख प्यास लगती है। जब योगी इस कण्ठ कूप में संयम करता है तो वहाँ की प्रज्ञा इसके वश में हो जाती है। इसलिए भूख-प्यास बन्द हो सकती है।

कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ॥31॥

जब योगी कूर्म नाड़ी में संयम करता है तो स्थिरता को प्राप्त हो जाता है। कण्ठ के नीचे छाती में कछुए के आकार की एक नाड़ी है जिसको कूर्म अर्थात् कछुआ कहते हैं। उस कूर्म नाड़ी में जब योगी संयम करता है तो ऐसा स्थिर हो जाता है जैसे गोह। यह कहावत भी है कि गोह जिस जगह पर चिपक जाता है, इतना स्थिर हो जाता है कि यदि मनुष्य उसे पकड़ कर चढ़ जाये तो वह गिर नहीं सकता है। यही स्थिरता की सिद्धि अंगद की थी जिससे रावण के दरबार में अपना पैर स्थिर कर दिया था।

मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥32॥

मूर्धा को ज्योति में संयम करने से योगी को सिद्धों का दर्शन होता है। शरीर कपार अर्थात् खोपड़ी के अन्दर एक छिद्र है उसी को मूर्धा कहते हैं। उसमें एक प्रकार की ज्योति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

होती है, उसी का नाम मूर्धा ज्योति है। जब योगी इस मूर्धा ज्योति में संयम करेगा तो दिव्य पुरूष जो साधारण मनुष्यों को नजर नहीं आते उनका वह आकाश में और द्यौ लोक में साक्षात करेगा।

प्रातिभाद्वा सर्वम् ॥33॥

अथवा प्रतिभा ज्ञान से सब कुछ जाना जा सकता है। इसी प्रतिभा को प्रातिभ कहते हैं। यह ज्ञान आत्मा का तारक ज्ञान है। इसी को विवेक ज्ञान की प्रथम अवस्था भी कहते हैं। इस प्रतिभा में ऐसा आत्म प्रकाश होता है कि संसार की सारी वस्तुएँ वैसे प्रत्यक्ष हो जाती हैं जैसे सूर्य की प्रथम किरणों के साथ जिसको प्रभा कहते हैं, उसके उदय होते ही सारी चीजें प्रत्यक्ष हो जाती हैं।

हृदये चित्तसंवित् ॥34॥

हृदय में संयम करने से चित्त का ज्ञान होता है। हृदय कमल चित्त का निवास स्थान है। इस हृदय कमल का मुँह नीचे की ओर है। इसी में अन्तःकरण का निवास स्थान है। इसी हृदय कमल में जब योगी संयम करता है तो वह दूसरों और अपने मन को वृत्ति सहित जान जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant-

सत्वपुरूषयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषोभोगः परार्थात्स्वार्थसंयमात्पुरुष ज्ञानम् ॥35॥

सत्व + पुरुष + योः + अत्यन्त + असंकीर्णयोः + प्रत्यय + अविशेषो + भोगः + परार्थ + अन्य + स्वार्थ + संयमात + पुरुष + ज्ञानम

चित्त (मन), आत्मा दो आखिरी अलग-अलग हैं, प्रतीतियाँ, अभेद भोग, परार्थ प्रतीति, भिन्न, स्वार्थ प्रतीति, संयम करने से, पुरुष का ज्ञान अर्थात् आत्मा को जनाने का ज्ञान, तब उसको प्रज्ञा उत्पन्न हो जाती है।

भावार्थ : चित्त और पुरुष अर्थात् मन और आत्मा परस्पर अत्यन्त भिन्न वस्तु है। परन्तु जब ये दोनों एक सा प्रतीत होने लगते हैं तब ही भोग उत्पन्न होता है। उसमें परार्थ प्रतीति से भिन्न जो स्वार्थ प्रतीति है उसमें संयम करने से पुरुष ज्ञान होता है। अर्थात् पुरुष विषयक प्रज्ञा उत्पन्न होती है। वास्तव में चित्त सतोगुण प्रधान होता है और सतोगुण प्रधान होने से प्रकाश स्वरूप और सुख स्वरूप होता है। पुरुष अर्थात् आत्मा, आत्मा यह ज्ञान स्वरूप होता है और यह प्रकाश स्वरूप भी है। इसलिए अज्ञानियों को आत्मा और चित्त एक

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

सा मालूम होने लगता है। वास्तव में चित्त और पुरुष एकदम भिन्न-भिन्न वस्तु हैं क्योंकि चित्त परिणामी है, जड़ है और भोग्य रूप है। पुरुष परिणामी नहीं है, वह चेतन है और वह भोगता है। इसलिए जब जड़ और चेतन का अत्यन्त भेद है। उसको एक समझना माया है। यह नाना योनियों में जाने का कारण है। परार्थ को छोड़कर स्वार्थ में संयम करने से आत्मा का ज्ञान होता है।

परार्थ का तात्पर्य है जब आत्मा अपने से भिन्न अर्थात् प्रकृति का चिन्तन करता है तो उस हालत में आत्म-कल्याण नहीं हो सकता, स्वार्थ चिन्तन लिखा है जिसका मतलब है कि आत्मा अपना उद्धार अपने कर सकता है।

ततः प्रातिभश्रावण वेदना दर्शास्वादवार्ताजायन्ते ॥36॥

ततः + प्रातिभ + श्रावण + वेदना + आदर्श + अस्वाद + वार्ता + जायन्ते।

अर्थ : उस उपरोक्त सूत्र सं0 35 में वर्णित स्वार्थ सिद्धि, स्वार्थ में संयम करने से आगे लिखी छः प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। अर्थात् पुरूष ज्ञान के उत्पन्न हो जाने से जो विलक्षण सिद्धियाँ प्राप्त होंगी वह भौतिक सिद्धियों से श्रेष्ठ

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

होंगी।

(1) प्रातिभ : उस सिद्धि को कहते हैं जिसके द्वारा योगी अपने मन में सूक्ष्म-से-सूक्ष्म छिपी-से-छिपी चीजें जान सकता है। वह भूत और भविष्य का ज्ञाता हो जाता है।

(2) श्रावण : उस योगी के सुनने की शक्ति इतनी कि दूर-से-दूर की ध्वनि सुन सकता है।

(3) वेदना : अर्थात् दिव्य स्पर्श योगी अपने दिव्य स्पर्श से जो चाहे सो कर सकता है।

(4) आदर्श : नेत्रों से दिव्य रूपों को देखने की शक्ति हो जाती है। योगी उन रूपों को देख सकता है जो आँखों से देखी नहीं जा सकतीं।

(5) अस्वाद : योगी दिव्य रस को प्राप्त कर लेता है अर्थात् बिना कुछ खाये वह चख सकता है, चखा सकता है।

(6) वार्ता : दिव्य गन्ध जानने की शक्ति बढ़ जाती है। अर्थात् वायु में कुछ ऐसी सूक्ष्म और पवित्र गन्ध बहती रहती है जिसे नाक नहीं महक सकती, उसे योगी महक सकता है।

ते समाधावुपसर्गाव्युत्थाने सिद्धयः ।।37।।

ते = वे उपरोक्त छः सिद्धियाँ, समाधि के लिए विघ्न हैं और व्युत्थान (चंचलता) के लिए सिद्धियाँ हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

अर्थ : उपरोक्त 6 सिद्धियों को प्राप्त करके यदि योगी सन्तुष्ट हो गया और कैवल्य के लिए आगे नहीं बढ़ा और सम्प्रज्ञात से उन असम्प्रज्ञात अवस्था तक नहीं पहुँचा तो सभी सिद्धियाँ गौरव हर्ष उत्पन्न करा सकती हैं लेकिन कैवल्य नहीं मिल सकता। इसीलिए ये सिद्धियाँ विघ्नकारक हैं। महामुनि पतंजलि ने योगियों को सावधान किया है कि चंचल अवस्था वाले योगियों के लिए सिद्धियाँ हैं पर उच्च योगी के लिए विघ्न हैं।

बन्धकारणशैथिल्या त्प्रचार संवेदना च चित्तस्य पर शरीरावेश:।।38।।

बन्ध + कारण + शैथिल्या + प्रचार + संवदेना च + चित्तस्य + पर + शरीर + आवेश।

बन्ध के कारण शिथिल होने से अर्थात् सकामकर्म करने से बँधता है और निष्कास करने से नहीं बँधता अर्थात् जब योगी सकाम कर्म करता है तब बँध जाता है और जब निष्काम कार्य करता है तो उसके बंधन से छूट जाता है। इस बन्धन के छूट जाने से शरीर निर्दोष हो जाता है और योगी अपने शरीर की नाड़ियों में संयम करके सूक्ष्म शरीर के विषय में जानकारी प्राप्त कर लेता है और उसके आने-जाने के मार्ग

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

को संयम के द्वारा पहचान लेता है और जब वह शक्ति योगी को प्राप्त हो जाती है कि यदि चाहे तो अपने सूक्ष्म शरीर को निकालकर दूसरे शरीर में प्रवेश करा सकता है। इस शक्ति को प्राप्त किये योगी मृतक शरीर में अपने सूक्ष्म शरीर को प्रवेश कर तथा शरीर धारण कर लेते हैं।

उदानजयाज्जलपङ्ककण्टकादिष्वसङ्ग उत्क्रान्तिश्च ॥39॥

उदान + जयात् + जल + पंक + कंटक + आदिषु + असंग + उत्क्रान्तिश्च।

उदान वायु को संयम के द्वारा जीत लेने पर योगी पानी के ऊपर, कीचड़ के ऊपर अथवा कांटें इत्यादि के ऊपर असंग होकर अर्थात् उन पर चलता है और उर्ध्व गति को भी उड़ा जाता है।

भावार्थ : शरीर के अन्दर जो पाँच प्रकार के प्राण हैं – जैसे प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान। उसमें उदान वायु ऊपर को गति करती है। इसका स्थान कंठ से ब्रह्माण्ड तक है। इसके द्वारा सूक्ष्म शरीर भी स्थूल से बाहर निकाला जाता है। जब योगी उदान वायु की क्रिया पूरा कर लेता है और अधि कार में आ जाती है तो अपने शरीर को वायु से भी हल्का कर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

लेता है और तब वह भी सुगमता से जल के ऊपर, कांटे पर अथवा इनसे ऊपर भी उड़ सकता है। उदान वायु के विजय से ही मनुष्य देवलोक को जाता है, पितृयान मार्ग छूट जाता है जिसका वर्णन छान्दोग्य उपनिषद में देख लें।

समानजयाज्ज्वलनम् ॥40॥

समान + जयात् + ज्वलनम्।

अर्थात् समान वायु के जीतने पर अथवा संयम करने पर योगी अग्नि की तरह चमकदार हो जाता है। समान वायु का सम्बन्ध शरीर के अग्नि से है, इसलिए समान वायु के विजय करने से शरीर में अग्नितत्व प्रकाशित हो जाता है।

श्रोत्राकाशयोः सम्बन्ध संयमाद्, दिव्यं श्रोत्रम् ॥41॥

श्रोत्र + आकाशयोः = श्रोत्र और आकाश में संयम करने से दिव्य श्रोत्र हो जाता है।

भावार्थ : श्रोत्र इन्द्रिय अर्थात् कान का सम्बन्ध अहंकार से है और अहंकार का सम्बन्ध शब्द तन्मात्रा से है और शब्द तन्मात्रा आकाश तत्व से पैदा हुआ है। इसलिए आकाश तत्व में संयम करने से जो दिव्य शब्द है, उनको सुन सकता है। ऐसे

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain, Digitization by eGangotri/Sarayu Trust, Funding IKS-MoE-Grant-

शब्द जो साधारण व्यक्ति यन्त्र से अथवा यन्त्र की सहायता से भी नहीं, सुन सकते, उन शब्दों को योगी सुन सकता है। इसी प्रकार दिव्य चक्षु, रसना को भी प्राप्त कर सकता है।

कायाकाशयोः सम्बन्ध

संयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाशगमनम् ॥42॥

काया + आकाशयोः + सम्बन्ध + संयमात + लघु + तूल + समापत्ते + च + आकाश + गमनम् ।

शरीर और आकाश के सम्बन्ध में संयम करने से रूई के समान हल्की दशा को प्राप्त हो जायेगा और आकाश में उड़ जाएगा। ऊपर कहे हुए उदान वायु के द्वारा योगी पानी और कांटों पर चल सकता है। मकड़ी के जाले पर चल सकता है। उससे भी आगे जब आकाश तत्व में सयंम करेगा तो आकाश गमन की सिद्धि हो जाती है।

वहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशाऽवरणक्षयः ॥43॥

वहिर + अकल्पिता + वृत्तिः + महाविदेहा + ततः + प्रकाश + आवरण + क्षयः ।

मन जब शरीर के बाहर कल्पना करता है तो उसे विदेहा

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

वृत्ति कहते हैं और शरीर के अन्दर कल्पना करता है तो महाविदेहा कहते हैं। भाव यह है कि जब योगी बाहर की कल्पनाओं को बन्द करके अपने अन्दर ही कल्पना करता है तो आत्मिक प्रकाश के निकट हो जाता है। उससे प्रकाश के ऊपर जो मूल, विक्षेप, आवरण का पर्दा होता है वह मिट जाता है।

स्थूलस्वरूप सूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद भूतजयः ॥44॥

इस सूत्र में योगी की अति कठिन सिद्धियाँ वर्णित हैं जो सबीज और निर्बीज समाधि की सिद्धियाँ कही जाती हैं।

स्थूल + स्वरूप + सूक्ष्म + अन्वय + अर्थवत् + संयमाद + भूत + जय।

स्थूल = पाँचों स्थूल भूत। पाँचों रूपों के स्थूल स्वरूप, सूक्ष्म भूत स्वरूप के अन्वय रूप को तथा अर्थत्व को संयम का विषय बनाकर जब योगी उनमें समाधि लगाता है तो पाँचों भूतों का स्वामी बन जाता है।

स्थूल स्वरूप = पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश।

स्वरूप = ऊपर पंचतत्वों का स्वाभाविक गुण उसका स्वरूप कहलाता है। जैसे अग्नि का उष्णता, वायु का गति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust, Funding IKS-MoE-Grant-

और कम्पन, पृथ्वी का मूर्ति, गन्ध इत्यादि।

सूक्ष्म = इसमें पाँचों तन्मात्रायें आ जाती हैं – गन्ध, रूप, रस, स्पर्श और शब्द। ये पाँचों तन्मात्रा सूक्ष्म रूप हैं।

अन्वय रूप = सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण का प्रकाश, क्रिया, स्थिति और धर्म।

अर्थत्व = पुरुष अर्थात् जीव का अन्तिम भोग अपवर्ग अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति। इसी मोक्ष की प्राप्ति के लिए ही सारी प्रकृति लीला कर रही है।

ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मानभिघातश्च ॥45॥

तत + अणिमा + आदि + प्रादुर्भाव + कार्यसमत्त + तत + धर्म + अनभिघातश्च।

उससे अर्थात् सूत्र सं० 44 में बतलाये गये भूतजयः से अणिमा आदि अर्थात् आठ प्रकार की सिद्धियाँ हो जाती हैं। काय सम्पत्त भी मिलता है। उनके धर्मों (पंचभूतों के) धर्मों को चोट नहीं पहुँचता अर्थात् पंचभूत किसी प्रकार से रुकावट नहीं डाल सकते।

अणिमा आदि आठ सिद्धियाँ –

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

(1) अणिमा - शरीर का सूक्ष्म कर लेना।

(2) लघिमा - शरीर को हल्का कर लेना।

(3) महिमा - शरीर को बड़ा कर लेना। गरिमा - शरीर को भारी कर लेना।

(4) प्राप्ति - चाहे किसी वस्तु को प्राप्त कर लेना।

(5) प्राकाम्य - बिना रुकावट के काम सिद्ध होना।

(6) वशित्व - पाँचों भूतों को वश में कर लेना।

(7) ईशित्व - पंचभौतिक पदार्थों को उत्पन्न करना और नाश करना।

(8) यम कामावशभित्व - योगी के संकल्प के मुताबिक पंचभूतों का परिवर्तन हो जाए।

रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि कायसम्पत् ॥46॥

रूप + लावण्य + बल + वज्र + संहननत्वानि + कायसम्पत्।

काय सम्पत् अर्थात् शरीर की सम्पत्ति। इस शरीर की चार सम्पत्तियाँ बतायी गयी हैं। (1) रूप (2) लावण्य = झलक (3) बल (4) वज्र की तरह बनावट।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-

ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमादिन्द्रियजयः ॥47॥

ग्रहण + स्वरूप + स्मिता + अन्वय + अर्थवत्व + संयम + इन्द्रिजयः

योगी जब ग्रहण स्वरूप, स्मिता, अन्वय और अर्थत्व में संयम करता है तो इन्द्रियों को जीत जाता है। ग्रहण अर्थात् इन्द्रियों का विषयामुखी होना, स्वरूप – इन्द्रियों का प्रकाशत्व होना, स्मिता – अहंकार जिससे इन्द्रियाँ उत्पन्न हुई हैं, अन्वय – सत, रज और तम तीनों गुणों का अपने धर्म में होना।

अर्थवत्व – पुरुष के प्रयोजन अर्थात् मुक्ति के लिए प्रकृति और शरीर के सारे अंगों का काम करना। जब योगी ऊपर लिखे पाँचों वस्तुओं में संयम के द्वारा अधिकार प्राप्त कर लेता है तो उसको विशेष प्रकार की शक्ति प्राप्त होती है।

ततोमनोजवित्वं विकरणभाव प्रधानजयश्य ॥48॥

उससे, इन्द्रियजय से, मनोजवित्वं की सिद्धि मिलेगी, विकरण + प्रधान + जयः च।

(1) मनोजवित्वं – उस सिद्धि को कहते हैं कि जब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

शरीर मन की तरह वेग वाला हो जाए।

(2) विकरण भाव – उस सिद्धि को कहते हैं जिसके द्वारा बिना इन्द्रियों के इस्तेमाल किए ही सब कुछ प्राप्त हो जाए।

(3) प्रधान जयश्च – प्रकृति पर विजय प्राप्त करना।

सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधि ष्ठातृत्वंसर्वज्ञातृत्वं च ॥49॥

सत्व + पुरुष + अन्यता + ख्याति + मात्रस्य + सर्व + भाव + अधिष्ठातृत्वं + सर्व + ज्ञातृत्वंच।

चित्त आत्मा, भेद, जानने वाले को, सर्व भावों का मालिक हो जाना और सब जानने वाला हो जाना, यह सिद्धि प्राप्त होती है।

भावार्थ : जब योगी को सूत्र 48 तक सारी बतलायी सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, तब योगी को चित्त और आत्मा का भेद प्रकट हो जाता है। उस अवस्था में सब भावों का मालिक हो जाता है और सब कुछ जानने वाला हो जाता है। इसी सिद्धि का नाम विशोका सिद्धि है।

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ॥50॥

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

तद् + वैराग्य + अपि + दोष + वीज + क्षय + कैवल्यम्।

उसके वैराग्य से अर्थात् विवेक ख्याति जो सूत्र 49 में बतलाया गया है, उसके वैराग्य से दोषों का बीज क्षय होने पर कैवल्य होता है।

स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्ट प्रसंगात् ॥51॥

स्थान्यु + उपनिमन्त्रणे + संग + समय + अकरणं + पुनः + अनिष्ट + प्रसंगात्।

स्थान वाले (प्रतिष्ठित लोग) उनके बुलावा पर लगाव या संगति, उत्पन्न होगा और घमण्ड नहीं करना चाहिए क्योंकि फिर से अनिष्ट होने का भय रहेगा। इस सूत्र में महामुनि पतंञ्जलि ने संयम के अधिकारी साधकों को सावधान किया है कि समाधि की प्रथम अवस्था में सिद्धि मिलने लगती है तब से पुरुष प्रकृति ज्ञान तक जितनी सिद्धियाँ मिलती हैं, कैवल्य में बाधक हैं, ईश्वर से एकता होने के मार्ग के रोड़े हैं। इन्हें सावधानी से गुप्त रूप से पार कर जाने से ही, ईश्वर कृपा से साधक निर्वीज समाधि तक पहुँच जाता है।

भूमियों की श्रेणी के आधार पर योगी चार श्रेणी में विभक्त किये जा सकते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

(1) काल्पनिक योगी

(2) मधुभूमिका वाले योगी

(3) प्रज्ञा ज्योति वाले योगी

(4) अति क्रान्त वाले योगी

इनमें से अन्तिम श्रेणी वाले योगियों को सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। पर सिद्धियों से एक प्रकार का अहंकार पैदा होता है जो कैवल्य तक नहीं पहुंचने देता।

क्षणत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् ॥52॥

क्षण + तत + क्रमयो + संयमात + विवेकजं + ज्ञानम्।

क्षण और उसके क्रम में संयम करने से ज्ञान उत्पन्न होता है जिसका ज्ञान विवेकज ज्ञान है। इस ज्ञान की प्राप्ति से योगी के लिए सब काल वास्तव में वस्तुशून्य हैं और यह केवल बुद्धि द्वारा निर्मित है।

जातिलक्षणदेशैरन्यतानवच्छेदात्तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः ॥53॥

जाति + लक्षण + देशैः + अन्यता + अवच्छेदात + तुल्यो + ततः + प्रतिपत्ति।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

अर्थ : एक दूसरे से जाति, लक्षण, देश से, भेद का निश्चय न होने से तुल्य वस्तुओं का ज्ञान, विवेकज ज्ञान से हो जाता है।

जाति – अनेक व्यक्तियों में जो सामूहिक सामान्य धर्म होता है, वह जाति है।

लक्षण – किसी जाति में जो पृथक करने वाले असाधारण धर्म होते हैं, वह लक्षण कहलाते हैं।

देश (स्थान) – संसार में जितने पदार्थ हैं, जाति लक्षण देश से इस तरह सम्बन्धित हैं कि साधारण मनुष्य नहीं जान सकता पर योगी विवेकज ज्ञान के द्वारा जान सकता है।

तारकं सर्वविषयं सर्वथा विषयमक्रमचेतिविवेकजंज्ञानम् ॥54॥

बिना किसी कारण के अपने आप उत्पन्न होने वाला ज्ञान तारक ज्ञान कहलाता है। सब विषयों को जानने वाला ज्ञान, सर्वविषयक ज्ञान कहलाता है। सब प्रकार के जानने का ज्ञान सर्वथा विषय ज्ञान कहते हैं और बिना कर्म किये ही ज्ञान का हो जाना। इन चारों वस्तुओं से जो ज्ञान सम्पन्न होता है उसे विवेकज ज्ञान कहते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

सत्व पुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यम् ॥55॥

सत्व = चित + पुरुष = आत्मा, साम्ये = समान रूप से, चित्त और आत्मा शुद्ध हो जाने से कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है। कैवल्य से तात्पर्य, अपवर्ग, निर्वाण, मुक्ति, मोक्ष, स्वरूप अवस्थिति, गुणाधिकार समाप्ति, परमपद, यह सब एकार्थ शब्द हैं।

विभूति पाद समाप्त

***

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कैवल्य पाद

पहले पाद में योग का स्वरूप समाधि के विषय में बतलाया गया है। दूसरे में उसका साधन, तीसरे में सिद्धियाँ बतलायी गयी हैं और चौथे पाद में कैवल्य पर प्रकाश डाला गया है। कैवल्य प्राप्त करने के पहले योगी को अपने चित्त को पाँच अवस्थाओं में लाकर पाँच प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त करनी पड़ती हैं। जिसके द्वारा पाँच सिद्ध चित्त उत्पन्न हो जाते हैं। वे पांच प्रकार की सिद्धियाँ कौन हैं, वह अगले सूत्र में बतलाते हैं।

जन्मौषधिमन्त्र तपः समाधिजाः सिद्धयः ।।1।।

जन्म + औषधि + मन्त्र + तप + समाधि + जा + सिद्धयः

जन्म, औषधि, मंत्र, तप और समाधि, इन पाँचों से उत्पन्न होने वाली सिद्धियाँ होती हैं।

(1) जन्म सिद्धि – वह सिद्धियाँ जिनके उत्पन्न करने में केवल जन्म ही कारण बनता है जैसे पक्षी को आसमान में उड़ने की सिद्धि, योग भ्रष्ट ज्ञानियों को योग में प्रवेश करना।

(2) औषधि सिद्धि – पारा आदि सोधने की क्रिया तथा वनौषधि द्वारा योगी अपने विलक्षण बुद्धि से जानकार

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran
अपने शरीर को पुष्ट करता है तथा इच्छानुसार दूसरों का भी कल्याण करता है।

(3) मंत्र सिद्धि - मंत्र जपने से मन में एकाग्रता आती है और समाधि भी प्राप्त होती है।

(4) तप सिद्धि - तप करने से शरीर में जितने दोष होते हैं भस्म हो जाते हैं और मन निखर जाता है। तब मन और इन्द्रियों की सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

(5) समाधि से उत्पन्न होने वाली सिद्धि - समाधि से उत्पन्न होने वाली सिद्धियाँ अर्थात् संयम से उत्पन्न होने वाली सिद्धियाँ, विभूति पाद में सविस्तार बतला दिया गया है। समाधि से उत्पन्न होने वाली सिद्धि बड़ी उच्चकोटि की होती है। मंत्र, तप और समाधि आदि से जो पाँच प्रकार की सिद्धियाँ बतलायी गयी हैं वे विशेषतर शरीर और इन्द्रियों से सम्बन्ध रखती हैं। यहाँ तक योगी अपने शरीर को दूसरे शरीर में प्रवेश कर सकता है परन्तु यहाँ शंका यह होती है कि शरीर से दूसरी जाति में बदल देने की सिद्धि क्या मंत्र से भी हो सकती है, क्योंकि मन्त्र में प्रत्यक्ष रूप से एक जाति से दूसरी जाति में जाने की क्रिया नहीं है। इस शंका का समाधान दूसरे सूत्र में करते हैं।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

आत्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥2॥

एक जाति से दूसरी जाति में बदल जाना प्रकृतियों के भरने से होता है। एक जाति से दूसरी जाति में बदल जाने का भाव यह है कि शरीर और इन्द्रियाँ मंत्र, जप और औषधि के द्वारा ऐसी विलक्षण शक्तियाँ प्राप्त कर लेती हैं, जो पहले से सर्वथा भिन्न प्रतीत होती हैं। प्रकृति = उपादान कारण। शरीर की प्रकृति अर्थात् उपादान कारण पृथ्वी है। जल आदि पंच भौतिक पदार्थ और इन्द्रियों का अपादान कारण स्मिता है। मतलब यह हुआ कि जैसे सूखे हुए पुआल में पहले से अग्नि छिपी होती है। तभी तो जरा सी आग पाने पर झुलस जाता है। उसी प्रकार योगी के शरीर में भी शक्तियाँ पहले से मौजूद होती हैं परन्तु पूर्ण विकास नहीं हो पाता है और जैसे-जैसे तामसी और राजसी प्रवृत्ति न्यून होती जाती है तो सात्विकी प्रवृत्ति बढ़ती जायेगी। जैसे-जैसे योगी के शरीर और इन्द्रियों में विलक्षण शक्ति होती जायेगी, ऐसा मालूम होगा कि पहले से बिल्कुल भिन्न है। जैसे सनत्कुमार संहिता में यह वर्णन है कि शिलाद मुनि के नन्दी नामक पुत्र ने इतना कठोर तप किया कि अपने पुत्र उपासना के द्वारा उसका इसी जन्म में शरीर और इन्द्रियों में ऐसा परिवर्तन हुआ कि मनुष्य शरीर को बदल कर देवता का शरीर पा लिया।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

निमित्तम प्रयोजकं प्रकृतीनां वरण भेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ।।3।।

निमित्तिकं + प्रयोजकं + प्रकृतिनाम + वरणभेद + क्षेत्रिकवत्।

धर्म आदि निमित्त, प्रेरक नहीं है। प्रकृतियों की रुकावट तोड़ने वाला होता है किन्तु उस धर्म आदि निमित्त से किसान की तरह।

भावार्थ – धर्म आदि निमित्त, प्रकृतियों का प्रेरक नहीं होता किन्तु किसान की तरह रुकावट दूर होती है।

सूत्र सं0 2 पढ़ने के बाद यह शंका होती है कि धर्म आदि जो निमित्त कारण हैं यह प्रकृति को प्रेरणा देते हैं। जाति अन्तर करने के लिए अथवा केवल रुकावट को हटा देते हैं।

इस सूत्र सं0 3 में यह उत्तर दिया गया है कि धर्म वगैरह प्रकृति को प्रेरित नहीं करते क्योंकि प्रकृति पहले से मौजूद है। केवल रुकावट को दूर करते हैं। कैसे, इस सूत्र में उत्तर दिया गया जैसे कि एक किसान जब अपना खेत सींचता है तो खेत के जल से भर जाने के बाद, दूसरे खेत में वह जल उठा कर नहीं फेंकता बल्कि मेड़ रूपी जो रुकावट होती है उस में छिद्र

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर देता है और दूसरे खेत में पानी भर जाता है।

निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ।।4।।

निर्माण + चित्तानि + स्मिता + मात्रात्

योगी चित्त के कारण स्मिता को वश में करके भिन्न चित्तों का निर्माण कर देता है। भोग वृत्ति में यह बतलाया गया है कि जब योगी की इच्छा अनेक शरीरों को रचने की हो जाती है, तब वह स्मिता जो चित्त का मूल कारण है, इसी को फैला देता है। जैसे अग्नि का एक कण जब फैल जाता है तब विशेष अग्नि का रूप धारण कर लेता है। इस सूत्र पर कई विद्वानों का मतभेद है जिनके आधार पर अर्थ भिन्न हो जायेगा।

प्रवृत्तिभेद प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ।।5।।

प्रवृत्ति के भेद में, प्रयोजकं = प्रेरणा करने वाला, चित्तम + एकम + अनेकेषाम् = चित्त एक अनेकों का होता है।

अर्थ : एक ही प्रधान चित्त अनेकों प्रवृत्तियों का प्रेरक होता है अर्थात् एक ही चित्त से अनेक शरीर के अनेक चित्त उत्पन्न हो जाते हैं। इस सूत्र में बतलाया गया है कि निर्माण चित्तों का अधिष्ठाता केवल मूल चित्त ही होता है। अब अगले सूत्र में बतलाते हैं कि पाँच प्रकार की सिद्धियाँ इस

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

पाद के प्रथम सूत्र में वर्णित हैं उनमें से कौन सर्वश्रेष्ठ है।

तत्रध्यांनजमनाशयम् ।।6।।

तत्र + ध्यानजम् + अनाशयम्।

उन पाँचों से, ध्यान से उत्पन्न होने वाली (सिद्धि) बिना वासना के होती है।

अर्थात् - मंत्र, जप, औषधि इत्यादि से प्राप्त होने वाली जो सिद्धियाँ हैं, उनसे वासना अर्थात् संस्कार बनते हैं परन्तु ध्यान से उत्पन्न होने वाली सिद्धि से कर्मों के संस्कार नहीं बनते और संस्कार के कारण ही मनुष्य जन्म-मरण के चक्र में पड़ा हुआ है। इसलिए महामुनि पतंजलि ने बतला दिया कि ध्यान से उत्पन्न होने वाली जो सिद्धियाँ हैं वह वासना रहित होने से सर्वश्रेष्ठ हैं। इसलिए समाधि द्वारा प्राप्त सिद्धि सर्वश्रेष्ठ कह दी गई।

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ।।7।।

कर्म + अशुक्ल + अकृष्ण + योगिनः + त्रिविधिम् + इतरेषाम्।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

कर्म, न शुक्ल, न कृष्ण, योगियों का, तीन प्रकार का, दूसरे लोगों का।

अर्थ : योगियों के कर्म न शुक्ल होते हैं, न कृष्ण होते हैं, अर्थात् न पुण्य होते हैं, न पाप। परन्तु साधारण लोग, जो योगी नहीं हैं, उनके तीन प्रकार के कर्म होते हैं। (1) पुण्य कर्म (2) पाप कर्म (3) पाप-पुण्य मिश्रित कर्म। परन्तु इससे भिन्न जो चौथे प्रकार का कर्म है जो न पुण्य हो न पाप हो, उसे केवल योगी ही कर सकता है।

ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम्

॥8॥

तत + विपाक + अनुगुणानाम् + एव + अभिव्यक्ति + वासनानाम्।

उससे (अर्थात् उन तीनों प्रकार के साधारण लोगों के कर्मों से) उन्हीं के फल के अनुकूल ही प्रकट कर देता है, वासनायें।

भावार्थ : तीन प्रकार के जो कर्म, पुण्य, पाप, पुण्य, मिश्रित, साधारण लोगों के होते हैं, उन कर्मों के अनुसार ही वासनाओं की उत्पत्ति होती है। दूसरे शब्दों में जैसे - हमारे कर्म होंगे वैसे ही संस्कार बनेंगे। पुण्य कर्म के पुण्य, पापकर्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0: In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

के पाप, पाप-पुण्य मिश्रित के पाप-पुण्य मिश्रित संस्कार बनेंगे।

जातिदेशकाल व्यवहितानामप्यानन्तर्य, स्मृति संस्कारयोरेकरूपत्वात॥9॥

जाति + देश + काल + व्यवहितानाम् + अपि + आनन्तर्य + स्मृति + संस्कारयोः + एकरूपत्वातं

जाति देश और काल से रुकावट वाली वासनायें भी रुकावट और दूरी वाली नहीं होती हैं क्योंकि स्मृति और संस्कार एक रूप होने से।

भावार्थ : जाति देश और काल कृत जो कर्म और वासनायें हैं उनमें यदि दूरी इत्यादि के कारण रुकावट दिख पड़ती है तो वास्तव में यह कोई रुकावट नहीं है क्योंकि स्मृतियाँ और वासनायें इन दोनों का रूप एक ही है। अर्थात् जब वासनायें बन गयी हैं तो स्मृतियाँ भी अवश्य हो जायेंगी। इसको कोई रोक नहीं सकता।

सासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात् ॥10॥

उन कामनाओं को, अनादियी है, आशीष = कल्याण की इच्छा, नित्य होने से।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भावार्थ : कर्मों की वासनायें एक जन्म अथवा दो जन्म इत्यादि से सम्बन्ध नहीं रखती, बल्कि उनका अनादिचक्र है क्योंकि अपने कल्याण की इच्छा प्रत्येक प्राणी में सदा विराजमान है। इस सूत्र में महर्षि पंतजलि जी ने यह स्पष्ट कर दिया कि वासनायें न केवल जाति देश और काल के ऊपर हैं अपितु वे अनादि हैं।

हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तद्भावः ।।11।।

हेतु + फल + आश्रैय + आलम्बने + संगृहीत्वात + एषाम + अभावे + तद् + अभावः।

हेतु, फल,आश्रय और आलम्बन से वासनायें संग्रहीत हैं। इन चारों के अभाव से वासनाओं का अभाव हो जाता है। भाव यह है कि यदि कोई यह शंका करे कि यदि वासनायें अनादिकाल से आ रही हैं तो चित्त कभी निर्मल नहीं होता है। इसका उत्तर महामुनि जी यह दे रहे हैं कि चित्त निर्मल भी हो सकता है और मुक्त भी हो सकता है क्योंकि वासनायें इन चारों पर निर्भर रहती हैं। हेतु, फल, आश्रय और आलम्बन। अब पता लगा कि इन चारों के कारण वासनायें बनती हैं। तो इन चारों को मिटा दिया जाए तो वासनाओं का आधार खत्म

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

हो जायेगा और वासनायें भी मिट जायेंगी।

(1) हेतु - अज्ञान (अविद्या) आदि पाँच क्लेश।

(2) फल - वासना का फल, जाति, आयु और रोग।

(3) आश्रय - आश्रयचित्त है, जिस पर अधिकार हो।

(4) आलम्बन - इन्द्रियों के विषय हैं।

अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद्धर्माणाम ॥12॥

अतीत + अनागतं + स्वरूपतः + अस्ति + अध्वमेदात् + धर्माणाम्।

भूत और भविष्य रूप से रहते हैं क्योंकि धर्मों का काल से भेद होता है। नियम यह है कि जितने धर्म हैं, धर्मी के साथ बने रहते हैं। इसलिए वासनाओं के जो ऊपर लिखे चार कारण हैं वह वास्तव में एक दम से मिटाये नहीं जा सकते बल्कि वर्तमान अवस्था से भूत अवस्था में चले जाते हैं। उनका अत्यन्ताभाव नहीं होता।

ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मानः

वे धर्म (गुण) प्रकट और सूक्ष्म होते हैं, गुण स्वरूप।

भावार्थ - वे धर्म प्रकट, सूक्ष्म और गुण स्वरूप हैं।

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

प्रत्येक धर्म तीन मार्गों वाला होता है।

(1) प्रकट - अर्थात् वर्तमान मार्ग जिसको स्थूल और व्यक्त भी कहते हैं।

(2) अतीत - (भूतकाल) जो छिप गया है।

(3) अनागत - आने वाला (भविष्यत्)

ये सब सतो, रजो और तमोगुण के खेल हैं।

परिणामैकत्वाद् वस्तुतत्वम् ॥14॥

परिणाम के एक होने से, वस्तु की एकता होती है। भाव यह है, यद्यपि तीनों गुणों से ही पदार्थ बनते हैं। तो भी तीनों गुण प्रत्येक वस्तु में बराबर रूप से नहीं हैं। किसी में सतो, किसी में रजो, किसी में तमोगुण प्रधान होता है। एक साथ रहते हुए भी तीनों में से एक गुण की प्रधानता आ जाती है।

वस्तुसाम्ये चित्तमेदात्तयोर्विभक्तः पन्थाः ॥15॥

वस्तु + साम्य + चित्त + मेदात + तयो + विभक्त + पंथा।

वस्तु के एक होने पर भी चित्त के भेद से, उन दोनों को अर्थात् चित्त और वस्तु का अलग-2 मार्ग है।

भावार्थ : वस्तु के एक होने पर भी चित्त के भेद से उन

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

दोनों चित्त और वस्तुओं का अलग-अलग मार्ग है। प्रत्येक वस्तु अपने-अपने स्वरूप में स्थित है और बहुत से चित्तों का विषय बन सकती है। एक ही वस्तु को देख करके वस्तु के भिन्न भिन्न होने के कारण मनुष्यों की अलग-अलग भावनायें बन जाती हैं। इसका भोग वृत्ति में उदाहरण इस प्रकार है -

एक सुन्दर स्त्री को देखकर उसके पति के लिए काम की भावना हो सकती है। उस को देखकर वह उसकी प्राप्ति में सुख का अनुभव करना चाहेगा। उसी स्त्री को देखकर उसकी सौत को जलन होगी, जिससे वह दुखी होगी। उसी स्त्री को देखकर एक योगी को न सुख होगा, न दुख होगा, उदासीन रहेगा। इसका मतलब है कि एक सुन्दर स्त्री आदमी में कई भावनायें पैदा करती है। इसी प्रकार संसार की सभी वस्तुएँ अलग-अलग भावनायें पैदा कर सकती हैं।

न चैकचित्ततन्त्रवस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात् ॥16॥

न + च + एक + चित्त + तन्त्रं + वस्तुं + अप्रमाणकं + तदा + किंस्यात्।

न ही, और, एक चित्त के आधीन है वस्तु वह बिना प्रमाण (चित्त के, उस समय क्या होगी)।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

भावार्थ : शंका है कि भिन्न-भिन्न को एक ही वस्तु, उनके भाव के अनुसार ही भिन्न-भिन्न दिखायी पड़ते हैं परन्तु यदि यह मान लिया जाए कि सभी वस्तु एक ही चित्त के आधीन हैं तब क्या दोष होगा। उत्तर यह है कि यदि चित्त एक वस्तु को छोड़कर दूसरी वस्तु में लग जाता है तो उस समय उस वस्तु का अभाव हो जाना चाहिए। परन्तु ऐसी वस्तु देखने में नहीं है। चित्त कहीं लग जाए पर एक ही देखती है।

तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम।।17।।

फिर शंका करते हैं कि यदि वस्तु की सत्ता स्वतंत्र मानी जाए तो वह सदा चित्त को ज्ञान रहता है परन्तु चित्त को वस्तु का ज्ञान कभी नहीं रहता। इसलिए सिद्ध होता है कि वस्तु चित्त के आधीन है। इस सूत्र में महर्षि पतजंलि शंका का समाधान करते हैं। उस पदार्थ के प्रतिबिम्ब, अपेक्षा वाला होने से चित्त को वस्तु ज्ञात और अज्ञात होती है। चित्त को वस्तु को जानने में उसके उपराग अर्थात् वस्तु का चित्त में प्रतिबिम्ब पड़ना उपराग की अपेक्षा होती है। इसलिए वस्तु उसको अज्ञात और ज्ञात होती है। अब बात यह है कि वस्तु का चित्त में प्रतिबिम्ब पड़ता है उसी का ज्ञान होता है। जिसका प्रतिबिम्ब

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

चित्त पर नहीं पड़ता, उसका ज्ञान नहीं होता परन्तु वस्तु चित्त का निर्माण नहीं करता।

सदाज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात् ॥18॥

अर्थ – सदा ज्ञान बना रहता है चित्त की वृत्तियों का, उस चित्त के मालिक को पुरुष (आत्मा) को परिणामी नहीं होने से।

भावार्थ : चित्त का स्वामी पुरुष परिणामी नहीं है अर्थात् एक रस है। इसलिए चित्त की वृत्तियाँ सदा ज्ञात रहती हैं। पुरुष, चित्त की वृत्तियों का रस देखने वाला साक्षी है। वास्तव में चित्त जड़ है और चित्त में ज्ञान, स्वभाव से नहीं हो सकता, परन्तु ज्ञान रूप पुरुष (आत्मा) से सटा होने से आत्म प्रकाश से ही ज्ञानवान हो जाता है। जैसे अग्नि में डाला हुआ टुकड़ा लोहा होते हुए भी थोड़ी देर के लिए आग हो जाता है।

न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात् ॥19॥

यदि यह कोई शंका करें कि चित्त स्व प्रकाश से प्रकाशित होता है और उसे पुरुष की समीपता से प्रकाश नहीं लेता है तो इस शंका का समाधान महर्षि इस सूत्र में कर रहे हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

नहीं, वह, चित्त, स्वप्रकाश है, दृश्य होने से।

भावार्थ : वह चित्त स्वयं दृश्य है इसलिए वह स्वप्रकाश नहीं है। द्रष्टा और दृश्य दो वस्तु होती है। द्रष्टा वह है जो देखे और दृश्य वह है जो देखा जाए। चित्त द्रष्टा नहीं है क्योंकि वह पुरुष द्वारा जाना जाता है। पुरुष द्रष्टा है और चित्त दृश्य है इसलिए देखने वाला ज्ञानी होता है। इसलिए चित्त ज्ञानी नहीं है और वह स्वप्रकाश भी नहीं है।

एकसमये चोभयानवधारणम् ॥20॥

यदि कोई यह शंका करे कि चित्त को ही वस्तु का ज्ञान होता है और चित्त अपना भी ज्ञान कर लेता है तो उस दशा में पुरुष को मानने की आवश्यकता नहीं है। इसका उत्तर महर्षि इस सूत्र में दे रहे हैं कि एक समय में चित्त को विषय का ज्ञान और साथ ही अपना ज्ञान भी, ये दोनों ज्ञान नहीं हो सकते। चित्त केवल विषय ज्ञान ही कर सकता है परन्तु अपना ज्ञान नहीं कर सकता इसलिए पुरुष को मानना पड़ेगा कि पुरुष को ही चित्त का ज्ञान होता है।

चित्तान्तरदृश्येबुद्धिबुद्धेरेतिप्रसङ्गः स्मृतिसंकरश्च ॥21॥

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

चित्त + अन्तरदृश्ये + बुद्धिबुद्धः + अति + प्रसंगः + स्मृतिसंकरश्च

अर्थ : यदि कोई यह शंका करे कि एक चित्त से विषय ग्रहण किया जाता है और उस विषय सहित चित्त को दूसरा चित्त ग्रहण कर लेता है। इस हालत में पुरुष की आवश्यकता नहीं रह जाती। इसका उत्तर महर्षि इस सूत्र में देते हैं। एक चित्त को दूसरे चित्त का दृश्य मानने में चित्त का चित्त होना अनवस्था हो जाता है और इससे स्मृतियों की मिलावट हो जायेगी। भाव यह है कि यदि एक चित्त के बदले दूसरा चित्त मान लिया जाए तो दूसरा व्यक्ति तीसरा चित्त मान ले या चौथा, पाँचवाँ चित्त मानना पड़ेगा तो यही अनवस्था दोष है। इसलिए किस चित्त पर कौन सा संस्कार पड़ा नहीं निश्चित हो सकता। इसलिए पुरुष का मानना आवश्यक है।

चित्तेरप्रतिसंक्रमायास्ताकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ॥22॥

यदि कोई यह शंका करे कि आप पुरुष को ज्ञानी मानते हैं और द्रष्टा मानते हैं। ज्ञान प्राप्त करने के लिए और द्रष्टा बनने के लिए दो चीजों का होना बड़ा आवश्यक है। (1) क्रिया (2) परिणाम। परन्तु क्रियारहित और अपरिणामी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। इसलिए पुरुष, चित्त के विषय का किस प्रकार से ज्ञान कर सकता है। इसका उत्तर महर्षि इस सूत्र में देते हैं।

चेतन पुरुष को, जो क्रिया अथवा परिणाम रहित है, स्वप्रतिबिम्बित चित्त के आकार की तरह होने पर अर्थात् चित्त का ज्ञान होता है।

भावार्थ : यद्यपि पुरुष अपरिणामी है और किसी विषय से उसका सम्बन्ध भी नहीं है, और निर्लेप है तथापि चित्त परिणामी है और उसका प्रतिबिम्ब पड़ता है जिससे पुरुष तदाकार हो जाता है और चित्त की वृत्तियों का अनुपाती बन जाता है। जैसे निर्मल जल में जब चन्द्रमा की छाया पड़ता है और जल की तरंगें हिलोरें मारती रहती हैं तो चन्द्रमा की छाया हिलती दिखाई देती है। यद्यपि चन्द्रमा आकाश में अपने आप स्थिर है वैसा ही चित्त की छाया जो चेतन पुरुष पर पड़ रही है, वह प्रतिबिम्ब के कारण ही चित्त के समान मालूम होने लगती है। वास्तव में चेतन पुरुष इससे परे है।

द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् ।।23।।

दृष्टी + दृश्य + उपरक्तं + चित्तं + सर्वार्थम्।

द्रष्टा और दृश्य से रंगा हुआ चित्त सारे अर्थ वाला (आकार वाला) हो जाता है।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

भावार्थ : चित्त, सत, रज, तम, गुणों का (प्रथम) सात्विक परिणाम है। इसलिए यह परिणामी और अचेतन है। यह इसका अपना स्वरूप है यानी जड़ है। (द्वितीय) पुरुष के प्रतिबिम्बित चित्त जो चेतन के समान प्रतीत होता है वह द्रष्टा से उपरक्त चित्त कहा जाता है। (तृतीय) वाह्य विषयों से प्रतिबिम्बित चित्त जिससे संसार की चीजें जैसी होती हैं वैसी प्रतीत होने लगती हैं। उसको उपरक्त (रंग जाना) कहते हैं। वास्तव में चित्त बाहरी संसार और पुरुष और आत्मा तीनों अलग अलग हैं।

तदसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थसंहत्यकारित्वात् ॥24॥

तत् + असंख्ये + वासनाभिः + चित्रमपि + परार्थ + सनहत्य + कारित्वात।

वह (चित्त) अनगिनत वासनाओं से चित्रित होने पर भी दूसरे के लिए सनहत्यकारी होने से।

सनहत्यकारी उस वस्तु को कहते हैं जो कई चीजों से मिलकर बनी हो। नियम यह है कि जो सनहत्यकारी वस्तु होती है वह अपने लिए नहीं होती, वह दूसरे के लिए होती है। चित्त यद्यपि देखने में स्वतन्त्र है परन्तु वास्तव में यह भी

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

असंख्य वासनाओं से चित्रित है और प्रकृति से बना है। इसलिए दूसरे के लिए है, अर्थात् पुरुष के लिए है।

विशेषदर्शिन आत्मभावभावनाविनिवृत्तिः

॥25॥

विशेष + दर्शिन + आत्म + भाव + भावना + निवृत्तिः।

नोट – अभी तक ऊपर के सूत्रों में चित्त और पुरुष के भेद बतलाये गये अब अगले सूत्र में आत्मा का स्वरूप बतलाया जायेगा। परन्तु आत्मा को युक्ति से नहीं जाना जा सकता। यह केवल अनुभव का विषय है।

विशेष रूप से देखने वाले की आत्मभाव की भावना निवृत्ति हो जाती है अर्थात् आत्मभाव की भावना का मतलब यह है कि मैं कौन हूँ, क्या था, आगे क्या होगा ? इस भावना से योगी मुक्त हो जाता है जो कि पुरुष और चित्त के भेद को अच्छी तरह जान जाता है। इसी को विशेष दर्शन कहते हैं। इसी को विवेक ज्ञानी और ख्याति भी कहते हैं।

तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम्

॥26॥

तब, विवेकनिम्नं अर्थात् विशेष दर्शन के उदय होने पर

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

विशेषदर्शी योगी का चित्त कैवल्य की ओर झुक जाता है।

तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥27॥

अब त्याग का उपाय बतलाते हैं। ऊपर के सूत्र में यह बताया गया है कि जब विशेषदर्शी को विशेष दर्शन हो जाता है तब उसका चित्त कैवल्य की तरफ झुक जाता है परन्तु इतने ऊँचे उठे हुए चित्त में कभी-कभी दुर्गुण और रुकावट आ जाती है, उसी का अगले सूत्र में वर्णन है।

उस विवेक ज्ञान के छिद्रों अर्थात् बीच-बीच में दूसरीं चचल वृत्तियाँ, पहले संस्कार से उत्पन्न हो जाती हैं तो अभिप्राय यह है कि विवेक ज्ञान के होने पर भी योगियों की समाधि की दशा में कभी-कभी चंचल वृत्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं तो अब प्रश्न है कि उन वृत्तियों को कैसे रोका जाए, तो उसका वर्णन अगले सूत्र में है।

हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ॥28॥

निवृत्ति, इन चंचल वृत्तियों को कहा गया है। इन चंचल वृत्तियों को रोकने के लिए बतलाते हैं। जिस प्रकार से पंचक्लेश रोके जाते हैं उसी प्रकार से ये भी रोकी जाती हैं। दूसरे पाद में 10वें और 11वें सूत्र में क्लेशों को मिटाने का उपाय बतलाया

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

है। वही उपाय यहाँ भी लागू है।

प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्यं सर्वथा विवेकख्याते धर्ममेघः समाधिः ॥29॥

प्रसंख्यान ज्ञान में भी विरक्त है जो योगी निरन्तर विवेकख्याति के उदय होने से धर्म मेघ नाम की समाधि हो जाती है।

भावार्थ : जो योगी प्रसंख्यान ज्ञान से भी विरक्त हो गया है उनका विवेक ज्ञान निरन्तर और स्थिर होता है। उसके बीच में पूर्व जन्म की कोई वासना-संस्कार नहीं आ सकता। उस दशा में जो उसे समाधि मिलेगी, वह धर्म मेघ समाधि है। प्रश्न है धर्म मेघ समाधि से क्या काम होगा। उसका वर्णन अगले सूत्र में है।

ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः ॥30॥

असधर्ममेघ समाधि में क्लेश और कर्मों की निवृत्ति हो जाती है। भाव यह है कि धर्म मेघ समाधि होने से अविद्या आदि पाँचों क्लेश उत्पन्न नहीं होते हैं और पाप-पुण्य कर्म नहीं होते हैं।

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

तदासर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम् ।।31।।

सूत्र नं0 - 30 में यह बतलाया गया कि धर्म मेघ समाधि का परिणाम, क्लेश कर्म की निवृत्ति है। अब प्रश्न होता है जब क्लेश कर्म की निवृत्ति हो जाती है तब चित्त की क्या स्थिति होती है। इसका उत्तर अगले सूत्र में वर्णित है। क्लेशों की निवृत्ति हो जाने पर, सारे आवरण लगे हुए, चित्त के प्रकाश के अनन्त होने से ज्ञेयं थोड़ी रह जाती है।

भावार्थ : भाव यह है कि चित्त सतोगुण प्रधान वस्तु है और यह सूर्य के समान स्वप्रकाश रखता है। इस प्रकाश के ऊपर पंचक्लेश अविद्या आदि और सकाम कर्मों की वासनायें बादल की तरह ढक कर इसे कलुषित करती हैं। जब धर्म मेघ समाधि लगती है तब यह आवरण हट जाता है और चित्त में प्रकाश आ जाता है।

ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम ।।32।।

ततः + कृतार्थानाम् + परिणाम + समाप्तिः + गुणानाम।

तब, कृतार्थ हुए, गुणों के परिणाम के क्रम की समाप्ति

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

हो जाती है। भाव यह है कि प्रकृति के जो तीन गुण हैं, सत, रज और तम विकृत होकर विष रूप धारण किए हैं, जिसका काम पुरुष को सांसारिक भोग देना तथा मुक्ति देना है, वह अब समाप्त हो जाता है अर्थात् पुरुष को विवेक ज्ञान के द्वारा वह अपवर्ग में भोग को छोड़कर पहुँच जाता है और प्रकृति का काम समाप्त हो जाता है।

क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ॥33॥

क्षण + प्रतियोगी + परिणाम + उपरान्त + निर्ग्राह्य + क्रमः

इस सूत्र में ऊपर लिखे जो क्रम शब्द आया है उसी को महर्षि इस सूत्र में स्पष्ट कर रहे हैं।

प्रत्येक क्षण होने वाली, परिणाम की समाप्ति पर ग्रहण करने योग्य क्रम कही जाती है। भाव यह है कि क्षणों की निरन्तर एक धारा चल रही है। उसी को परिणाम क्रम कहते हैं। प्रत्येक क्षण में प्रत्येक वस्तु में कोई न कोई परिणाम सूक्ष्म रूप में होता है। यह गुणों का जब क्रम बन्द हो जाता है तो पुरुष अकेला हो जाता है।

पुरुषार्थ शून्यानां गुणानां प्रति प्रसवः कैवल्यं

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिरक्तेरिति ।।34।।

पुरुष अर्थ से शून्य हुए गुणों का अपने कारण में लौट जाना, इसी को कैवल्य कहते हैं अथवा अपने स्वरूप में स्थित हो जाना। चिति शक्ति का कैवल्य है। पुरुषार्थ से शून्य हुए गुणों का अपने कारण में लीन हो जाना कैवल्य कहलाता है अथवा दूसरे शब्दों में चिति शक्ति अथवा आत्म शक्ति कहलाता है।

॥ समाप्तः ॥

***

नोट : आज दिनांक 16.12.1967 को सायंकाल 8 बजकर 45 मिनट पर इस कैवल्य पाद की समाप्ति, सम्पूर्ण योग, दर्शन, पूज्यपाद योगिराज श्रीस्वामी ओंकारानन्द जी महाराज के मुखारबिन्दु से संक्षिप्त व्याख्यान में समाप्त हुआ।

॥ समाप्तः ॥

इसका लेखन कार्य श्री ओंकारनाथ यादव जी के द्वारा किया गया था।

***

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Grant-2

महर्षि जी द्वारा लिखित कुछ पुस्तकों के नाम तथा संशोधित मूल्य

क्रम	नाम	मूल्य वितरण
१.	हिन्दुस्तान में हिंसा और अहिंसा (प्रतियां समाप्त)	
२.	क्रिया-योग	५.००
३.	ओंकार-भजनावली (नये भजनों के साथ)	१०.००
४.	सुख-दुःख	५.००
५.	ओङ्कार-वचनामृत	५.००
६.	शिवपुराण एवं ओङ्कारोपासना	१०.००
७.	हम ओम् की उपासना क्यों करें ?	२.००
८.	परमलक्ष्य और उसकी प्राप्ति	१५.००
९.	उपासना योग पर एक विचार	२५.००
१०.	प्रणव-पूजन-पद्धतिः	२०.००
११.	प्रणव पञ्च मालिका	२५.००
१२.	नारी-अधिकार, गुण, गरिमा	१०.००
१३.	माया-मोह की कथा	२५.००
१४.	उत्तङ्क ऋषि की कथा	५.००
१५.	वीर पिता का वीर पुत्र की कथा	५.००
१६.	संक्षिप्त प्रणव-पूजन पद्धतिः	३.००
१७.	ईशोपनिषद का सरल संक्षिप्त परिचय	५.००
१८.	वेदों में पुरूष सुक्त	५.००
१९.	वैदिक गन्धर्व और अप्सरायें	५.००
२०.	प्रणव-पूजन-पद्धतिः की बृहद व्याख्या	३०.००
२१.	गौरीशंकर राम के उपासक नहीं ओङ्कार के उपासक थे	५.००
२२.	एक महत्वपूर्ण पत्र का उत्तर	२.००
२३.	वैदिक-देव शङ्कर, वेदोक्त, ओङ्कारोपासना के आदि शिक्षक हैं	५.००
२४.	मैंने क्या देखा	५.००
२५.	भ्रांतिनिवारण	५.००
२६.	ओङ्कार-चालीसा एवं ओङ्कार-कवच	५.००
२७.	अथर्ववेद का एक सरल संक्षिप्त परिचय	१००.००
२८.	ओम् तथा शिव और कृष्ण	५.००
२९.	समर्पण	५.००
३०.	क्या ओम की पूजा शास्त्रों द्वारा प्रमाणित है ? (प्रवचन)	२.००
३१.	महर्षि ओङ्कारानन्द जी की संक्षिप्त जीवन झांकी।	५.००
३२.	वैदिक उपदेश	५.००
३३.	संक्षिप्त उपनिषद परिचय	१०.००
३४.	प्रश्नोपनिषद	१०.००
३५.	मुण्डकोपनिषद	१०.००
३६.	केनोपनिषद	१०.००
३७.	माण्डूक्योपनिषद	१०.००
३८.	An exposition on the Yoga of Devotion	५०.००
३९.	पातंजलि योग दर्शन का सरल एवं संक्षिप्त भाष्य	५०.००
४०.	ॐ की प्रतिमा, फोटो, रुद्राक्ष की माला, शंकर जी एवं महर्षि जी का फोटो	

पता-प्रकाशन विभाग, ओंकार आश्रम, पत्रालय-बालापार, गोरखपुर - २७३००७

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon.

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gran

RajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgaon

-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE-Gra

ajGuru Math, Shivala, Varanasi Collection. Equipment: Heritage Foundation, Jalgao

C-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri/Sarayu Trust. Funding IKS-MoE Grant

www.pranavmandir.org

प्रकाशक :

महर्षि ओङ्कारानन्द प्रणव मन्दिर समिति, (प्रकाशन-विभाग)

प्रणव मन्दिर, ओङ्कार-आश्रम

ग्राम : वैजनाथपुर, पत्रालय : बालापार, जनपद गोरखपुर (उ०प्र०)

मूल्य ₹50.00